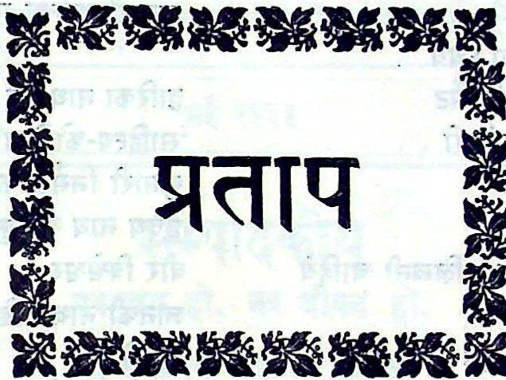
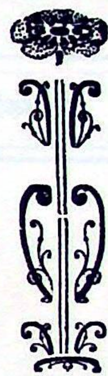
❀ ओ३म् ❀

सत्यं ! शिवम् !! सुन्दरम् !!!

'सत्य और सुन्दर ज्ञान हमारा,
श्रेयस्कर अरु सुखकारक हो ॥'
—'वीर'







हिन्दी--विभाग

अध्यक्ष

प्रोफेसर जिया लाल कौल

एम० ए०, प्रभाकर

सम्पादक

वीर विश्वेश्वर

बी० ए० स्टूडेंट

तालिका

लेखकों से निवेदन

हमें प्रायः लेखकों की लापरवाही के कारण बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस कठिनाई के निवारण और उन की जानकारी के लिये लेख-सम्बन्धी नियम यहां दिये जाते हैं:—

१. प्रत्येक लेख फुलस्केप कागज़ पर, एक ओर ही और पंक्तियों के बीच में कुछ स्थान छोड़ कर लिखा जाये।

२. केवल स्वरचित लेख प्रकाशित हो सकते हैं।

३. लेख अधिक विस्तारपूर्ण न हो कर छोटे और रोचक होने चाहियें। लम्बे लेखों के लिये रद्दी की टोकरी में ही स्थान मिल सकता है।

सम्पादक

प्रताप

खण्ड १६	मई १९३९	संख्या १

सम्पादकीय

नवयुवक हो, नव जीवन हो,
नव उल्लास अरु नव प्रवृत्ति,
नव सुषमा और भावुकता से
फिर भर क्यों आए न प्रकृति ॥

नया वर्ष अपने साथ नई २ उमँगें लाता है। हमारा कॉलेज भी नये वर्ष के साथ अपने नये छात्रों का आवाहन कर रहा है। जब तक यह अङ्क छपकर पाठकों के हाथ में पहुँचेगा हमें विश्वास है कि तब तक हमारे कॉलेज के नये विद्यार्थी अपने कॉलेज से पूरी तरह परिचित हुए होंगे। हम उनका स्वागत करते हैं और उनसे पूरे सहयोग की आशा रख कर उन्हें अपने मस्तिष्क-बल का विस्तार इस पत्रिका रूपी क्षेत्र में करने के लिये आमंत्रित करते हैं—

स्वागत स्वागत नव-युवक-गण
तेरा आना स्वागत हो।
इतना कष्ट और इतना सङ्कट,
तेरे फल का कारण हो ॥

हम ईश्वर से प्रार्थी हैं कि आपका ज्ञान विस्तृत हो। असत्य और असभ्यता का नहीं किन्तु 'सत्य' और सभ्यता का और वह भी कैसा हो ? सुन्दर ! ऐसा ज्ञान स्वयमेव सुखकर हो सकता है। यही हमारे जीवन की हर घटना और विशेष कर हमारी विद्या और ज्ञान का एक-मात्र उद्देश्य है। हमें चाहिये कि हम अपने ज्ञान को केवल अपने लिये सुखकारी न बना लें, क्योंकि वैसे तो वह निःस्वार्थ हो जाता है, अपितु हमारा ज्ञान औरों के लिये भी श्रेयस्कर हो।

हमें खेद है कि पिछली बार भी कुछ लेख पत्रिका में न आ सके और वे आज भी वैसे ही रुक गये। कारण यह कि हमें इससे पूर्व अङ्क में हद से ज़्यादा जल्दी करनी पड़ी। इस लिये जो ही कुछ लेख अल्प समय में शुद्ध किये गये वे मुद्रणालय को भेजे गये। हम अध्यक्ष महोदय के बहुत आभारी हैं कि उन्हें उस अङ्क के संशोधन इत्यादि के सम्बन्ध में बहुत सा काम स्वयं करना पड़ा। हमें उस समय लेखों को नये सिरे से लिखने के लिये जितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उन्हें परमेश्वर ही जानता है। इस अङ्क में इन लेखों के अभाव का कारण यह है कि अब यह निश्चित हुआ है कि मैगज़ीन वर्ष में दो के स्थान पर तीन बार प्रकाशित किया जाए और अन्य कॉलेजों की भाँति पृष्ठ-संख्या भी कम ही रक्खी जाय। अतः स्थान-अभाव के कारण हम कई नये लेख भी प्रकाशित न कर सके। वे अवश्यमेव दूसरे अङ्क में दिये जायेंगे।

हमें आशा है कि पत्रिका का यह क्रम बहुत लाभदायक रहेगा। पृष्ठ-संख्या पर पत्रिका का उच्च होना निर्भर नहीं किन्तु लेखों की उत्तमता पर। यदि पत्रिका में थोड़े ही परन्तु लाभदायक, शिक्षा-प्रद और साहित्यिक लेख हों तो वे अश्लील और हानिकारक लेखों के समारोह से कहीं अधिक शोभा देते हैं। हिंदी विभाग में जहाँ तक देखा गया है, साहित्य पर कोई लेख लिखना ही नहीं चाहता। हास्य का तो बिल्कुल ही अभाव है। कइयों ने समझ रखा है कि हिन्दी में किसी प्रकार का लेख प्रकाशित हो सकता है। यह उनकी भूल है। हमें चाहिये कि हम नाम-मात्र के लिये न लिखा करें अपितु साहित्य की सच्ची सेवा की धुन से। हमें चाहिये कि पाठकों के मस्तिष्क के पोषण के लिये कुछ नया खाद्य-पदार्थ रख दें जिसे पाठक पढ़ते ही प्रमुदित हो उठें, रो लें अथवा हँस लें, जिसे पढ़ कर उन्हें शान्ति मिले, जो उन्हें सुपथ की ओर ले जाए, कुपथ की ओर नहीं।

कई लेखक उसी पुरानी शैली को ही रटते जाते हैं। साहित्य आजकल नित-नये रङ्ग बदलता है और हम अभी लिखते हैं—

"एक बार एक नगर में एक राजा और एक रानी रहते थे। वह बहुत ग़रीब थे" इत्यादि, जिसका न कोई सिर है न पैर। ऐसे लेखों को देख कर हमें बहुत निराशा होती है अतः उन लौ सिख

लेखकों की सुविधा के लिये हमने इस विषय पर लिखा है कि 'कहानी कैसे लिखनी चाहिये।' वह लेख इसी पत्रिका में किसी दूसरी जगह छपा है। लेखकों को पत्रिका में अपनी कोटि (Standard) का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये नहीं तो कॉलेज और स्कूल की पत्रिका में क्या अन्तर है।

हमने प्रयत्न किया है कि अब से पत्रिका पाठकों के लिये एक साहित्यिक उपहार हो, प्रेम-कहानियों की गल्पमाला नहीं। हमने पाठकों की जानकारी के लिये हिंदी के सर्वश्रेष्ठ लेखकों के लेखों में से कुछ २ पंक्तियाँ अनूदित उद्धृत और कर के दी हैं जैसे इस बार 'बङ्किम बाबू' 'रवीन्द्र ठाकुर,' 'वियोगी हरि', 'अयोध्यासिंह' इत्यादि की। इस से पाठक एक तो उनकी शैली, भाषा, भाव आदि से परिचित होंगे और दूसरे मनोरंजन भी हो सकता है। हमें आशा है कि यह क्रम लाभदायक ही रहेगा।

टिप्पणियाँ

'मेरी भूल'—छोटी २ भूलों का फल कितना विषम हो सकता है, यह आप लेख में स्वयं देख सकते हैं। 'मेरी भूल' के बदले यदि 'उसकी भूल' शीर्षक रख दिया जाता तो कितना सुन्दर रहता क्योंकि वर्णन तो किसी और ही का हो रहा है न इसी लिये किन्तु फिर भी कहानी सरस और रुचिकर है।

'नरेन्द्र'—ऐसे शिक्षा-प्रद लेख हमारे कॉलेज में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हो सकते हैं।

'सुख'—लेखिका अन्तर्द्वन्द्व और मनो-विज्ञान का अंश दिखाने में पूरी तरह सफल हुई हैं। यह लेख भी कॉलेज का एक चित्र आपके सामने रखता है किन्तु एक पहेली के रूप में।

'मेरा स्वप्न'—मनुष्य-लोक के प्रति विद्रोह का एक चित्र।

'समाज की भेंट'—पुरानी शराब नई बोतल में। भेंट का करुण कारण लेख में ही देख लीजिये—

'प्रेम-चिह्न'—एक भग्न हृदय सम्राट् की कहानी और उसकी मृत्यु का कारण अब भी आगरे में लोगों के आकर्षण का कारण है—कितना अन्तर!

'टैलीफोन पर'—कड़वा मोदक।' अप्रकाशित लेखों की सूची।

'विभ्रम'—लेखक महोदय प्रायः प्रयत्न से ही लिखा करते हैं किन्तु कितना अच्छा होता जो वे पुरानी शैली को छोड़ नवीन शैली का अनुसरण करते। शेष वहीं देख लीजिये।

'सम्पादक'

स्वागत

(रचयिता—वीर विश्वेश्वर)

[१]

भटक भटक क्यों फिरते हो तुम—पागल ओ मतवारे,
इस जग की लीला अनुपम न्यारी—अनुपम वासी सारे।
प्रीत की रीत है याँ सब झूठी—प्रेमी हैं अकुलाए,
आओ, आओ मेरी नगरी—यह तुम को बहलाए॥

[२]

जिस जग में यूं फिरते हो तुम—वह जग यों तड़पाए,
चार दिनों बस प्रीति निभा के—प्रियतम फिर ठुकराए।
भौंरे की नाईं आए पर—जल्दी सुध बिसराए,
आओ, आओ मेरी नगरी—यह तुम को बहलाए॥

[३]

क्रोधी, कपटी, छलमयी याँ—अपने और पराए,
फिर ये जंगल झरने उपवन--तुम को कैसे भाए।
सारे हैं ये याँ दुखदाई--कौन तुम्हें समझाए,
आओ, आओ मेरी नगरी--यह तुम को बहलाए॥

[४]

मेरी नगरी सुन्दर सारी--जो तेरे मन भाए,
याँ का इक इक झरना अनुपम--कल कल कर बह जाए।
झर झर कर के सच्ची प्रीति के--मीठे गीत सुनाए,
आआ, आओ मेरी नगरी--यह तुम को बहलाए॥

[५]

आओ खोल रखे हैं मैंने--पाट हृदय के सारे,
आओ मेरे मन के द्वारे--आओ प्रियतम प्यारे।
मन्दिर की चेरी का स्वागत--तेरे दिल को लुभाए,
आओ, आओ मेरी नगरी--यह तुम को बहलाए॥

एक नये ढंग की कहानी—

पगली

(लेखक—वीर विश्वेश्वर)

'चली जाओ यहाँ से !'

'सरकार—!'

'बस तुम्हें कुछ भी नहीं मिल सकता।'

'किन्तु—'

'मेरी अवज्ञा का फल तुमको भोगना ही पड़ेगा।'

'क्षमा, सरकार—'

'नहीं, अब नहीं !'

'केवल एक बार तो—'

'बस ! तुम्हारी सुन्दरता और अभिमान का यही पुरस्कार हो सकता है।'

'दया करो, सरकार ! माँ बहुत बीमार है।'

'अब भी सोच लो—भला होगा।'

'नहीं ! ऐसा नहीं हो सकता—'

'नहीं हो सकता तो चली जाओ !'

[२]

'सुन्दरी ! कौन हो तुम ?'

'एक अभागिन—'

'हूँ—?'

'दर दर की ठुकराई हुई—'

'तेरा स्थान ?'

'यह सारा संसार—'

'तेरा साथी ?'

'दुर्भाग्य—'

'किन्तु—यह वेष ?'

'अपना पेट पालने के लिये—'

'नौकरी क्यों नहीं करती ?'

'डर लगता है—'

'डर···!'

'हाँ—'

'तो आओ मेरे संग—'

[३]

'एक पहेली बूझोगी, बीनू ?'

'कहो—'

'अच्छा कौन है हम में ?'

'तुम—'

'नहीं तुम—'

'ऊँह, मैं कब अच्छी ठहरी—तुम ही अच्छे हो, बहुत—अच्छे—'

'नहीं ! तुम—तुम हो न—'

'बस मैं नहीं बोलती—'

क्यों रूठ गईं फिर ?'

'ऊँह—'

[४]

'बीनू ! आज कहानी नहीं सुनाओगी ?'

'मैं नहीं सुनाती—'

'सुनाओ तो—अब पहेली न बुझवाऊँगा'

'सच—'

'हाँ—'

'तो सुनो,—' ये थे तीन—'

'तीन ? तीन क्या—कौए ?'

'न-ना—तीन,—भाई, बहन और मां—'

'माँ कौन ? अपने भाई, बहन की ?'

'उफ—'

'हैं ! चुप क्यों हुई, कहदो—'

'मैं नहीं कहती—'

'अच्छा अच्छा ! अब ठीक तरह सुनूँगा'

'ये थे भाई बहन और उनकी माँ—'

'अच्छा—अर्थात् एक थी माँ और उसके बेटा बेटी—अब समझा—'

'बेटा कमाता—'

'और माँ बेटी खातीं—यही न—'

'एक दिन भाई—'

'हाँ ! हाँ ! एक दिन—कहो, रुक क्यों गई ?'

'वह मज़दूरों के फसाद में—'

'ओह ! छोड़ दो यह—फिर'

'फिर ? बस, अब मैं—'

'नहीं, नहीं, कहो—तब निकली बिटिया क्यों ?'

'नहीं, पहले नहीं, मां बीमार होगई तब—'

'तो बिटिया बनी मज़दूरनी—हाँ ठीक है न ?'

'हाँ—एक दिन दवा के लिये पैसे न थे—'

'तो बिटिया आक़ा से मांगती—हर्ज ही क्या था—'

'लेकिन आक़ा ने कहा—'

'हाँ आक़ा ने कहा !'

'ओह ! क्यों दुहराते हो यह ?'

'तुम्हीं ने तो कहा—'

'मुझे यह मज़ाक अच्छा नहीं लगता'

'हैं ! रोने लगीं तुम पगली

'.............'

'कहो, कहो, बीनूँ ! देखो अब रहा नहीं जाता—'

'मैं अब कारखाने पर नहीं जाऊँगी, मुरली'

'नहीं जाओगी, क्यों ?'

'डर लगता है—'

'फिर वही बात—'

'वह मुझे घूर घूर कर देखता है—'

'अच्छा, तुम यहीं रहो—मैं अकेला जाता हूँ'

'————————'

'लेकिन बीनूँ ! तुम्हें डर तो नहीं लगेगा, अकेले यहाँ ?'

'नहीं, मैं तब तक काम करूँगी यहाँ—'

'हूँ !'

'लेकिन जल्दी आना—'

[५]

'कौन, मुरली—'

'हां ! महाराज—'

'कहां है तुम्हारी साथन— ?'

'साथन ? कौन—'

'वही—बीनूँ—'

'घर पर है, महाराज !'

'क्यों ?'

'यूँ हीं—'

'नहीं आएगी क्या ?'

'...................'

'जल्दी कहो ! चुप क्यों हो ?'

'डरती है महाराज—'

'ओ ! समझ गया—'गोपी' !'

'हाँ सरकार—'

'जल्दी ले आओ, उसे—'

'ठहरो नहीं। महाराज—'

'आप ऐसा नहीं कर सकते—'

'चुप ! तुम कौन हो रोकने वाले—'

'मैं कहता हूँ महाराज ! वहाँ कोई भी न जाने पाये—'

'उसने चोरी की है—'गोपी, चले जाओ तुम !'

'चोरी ? वह चोरी नहीं कर सकती—'

'बस, बदमाश ! बातें न बनाओ, तुम्हें उसपर कोई अधिकार नहीं।'

'बस मैं कहता हूँ ! मेरी झोंपड़ी पर कोई भी न जाने पावे—'

'कोई है—बाँध लो इसकी मुश्कें—'

'ओह ! म···मरा—'

[६]

'मु···र···ली—'

'अब कहाँ तक रटती जाओगी उसे—'।

'ओह ! तुम—राक्षस कहीं के—'

'मैं राक्षस— ?'

'हाँ तुम ! नीच—निर्लज—क़ातिल—अत्याचारी—'

'बन्द करदो इस बकवास को वीनूँ, ! सुनो—'

'बस, मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहती—'

'नहीं सुनना चाहती तो देखो—'

'हैं—कटार ! मा···मार दोगे मुझे ?'

'तो अब भी मान लो—देखो कितनी तेज़ है?'

'ओह तेज़—ज़रा इधर तो दो—'

'देखा—?'

'हाँ, देखती तो हूँ—बोल अब हत्यारे !'

हैं ! मुझ ही पर आक्रमण—'

'हाँ, यह है खून का बदला—मुरली के खून'

'ओ—ओह—खू···न'

[७]

'कौन हो तुम ?'

'मैं—हुँह; हुँह—म···मैं पगली'

'कहाँ रहती है तू ?'

'मैं—मैं मुरली की झोंपड़ी—नहीं—कहीं भी नहीं—'

'पहचानती हो किसी को—'

'हाँ तुम—जज—वह गोपी—वह मुरली—नहीं, नहीं, वह मुरली नहीं—वह है महाराज—वह—वह'

'कौन सेठ घणश्याम ?'

'हाँ—हाँ—वधिक मेरी माँ का—मेरे भाई का

'चुप रहो, पगली—'

'अच्छा पहचानती हो इस कटार को—'

'नहीं तो—'

'तनिक गौर से देखो—लो—'

'हाँ—यह मुरली के वधिक की—'

'ओ—ओह—म···मरा—'

'हैं ! पगली ने घणश्याम का अंत कर दिया, जिनाब'

'ले जाओ—इस निगोड़ी को—लटका दो फांसी पर—'

'अभी नहीं महाराज—एक बात शेष है—भाई के .खून का प्रतिकार—'

'ले चलो इस चुड़ैल को—'

'ओह ! यह तो मर गई है, महाराज !'

———o———

बाबू बङ्किम चंद्र

भौंरा क्या कहता है ?

श्रीयुत सम्पादक जी, आप को पत्र क्या लिखूँ। लिखना चाहता हूँ तो कई एक बार वैरी तङ्ग करने लग जाते हैं। मैं आजकल जिस झोंपड़ी में रहता हूँ इसके निकट ही दुर्भाग्य से मैं दो तीन फूलों के वृक्ष लगा चुका। मेरा विचार दृढ़ था कि चूंकि मेरा कोई नहीं है, इसलिये जब ये बड़े होंगे तो मेरे साथी और प्रेमी बनेंगे। न तो इन्हें .खुशामद करके फुल्लाने की और न ही इनके लिये रुपये व्यय करने की आवश्यकता होगी। न इनको खिलाना पड़ेगा न पहनाना। इनको प्रसन्न करने के लिये चापलूसी न करनी पड़ेगी और ये आप ही खिल उठा करेंगे। इनके अधरों पर मुस्कान है परन्तु आंखों में आंसू नहीं। हृदय में अनुराग है पर कठोरता नहीं। मुझे सब छोड़ जायें और दूध दही खिलाने वाली श्यामा गवालन भी छोड़ जाए मगर मुझे परवा न होगी क्योंकि मेरे भोले और आकर्षणीय मित्र फूल तो मेरे पास हैं !

अनु० 'सुदर्शन'

———

रवींद्रनाथ ठाकुर

श्राप

यात्री भय के कारण पीले पड़ गये। स्त्रियां चिल्लाती हैं, पुरुष उनका अनुकरण कर रहे हैं। कुत्ता भौंकने लगा किन्तु उसे मार २ कर चुप करा दिया गया। रात समाप्त होने को नहीं आती। वे एक दूसरे को अपने पापों के लिये अपराधी ठहराते हैं। सहसा उनके हृदय में प्रकोपाग्नि भड़क उठती है परन्तु ज्योंही उनकी कटारें बाहर निकलीं, आकाश में बिजली चमकने लगी तब वह शोर कुछ धीमा पड़ गया। वे अपने मृत नेता के शरीर की ओर एकटक देखने लगते हैं। स्त्रियों की हिचकियां बंध गईं। पुरुष सिर झुकाए अपने मुखों को छुपाने लगे। कुछ भागने लगे परन्तु वे ऐसा न कर सके। वे अपने ही भय और पाप के कारण बन्दी हुए।

*फैशन-स्मृति

स्मृति के आदि में..........जी स्वयं ही लिखते हैं :—

दुराचारसंस्थापनाय सदाचारक्षयाय च ।
भारतवर्षमधोनेतुमात्मनिर्माणं कृतं मया ॥ १ ॥
मोचीनां वार्बराणां च टेलरधोबीनां तथा ।
मरचंटडाक्टराणां चाभ्युत्थानं कृतं मया ॥ २ ॥
धर्माणां पुरायकृतीनां सर्वनाशाय च तथा ।
युगेऽस्मिन्परमे रम्ये निजोत्थानं कृतं मया ॥ ३ ॥
पेस्ट्रीबिस्कूटकेकाद्या डबलरोटी तथैव च ।
न्यक्टायहैटादिवस्त्राणि पुनन्ति भुवनत्रयम् ॥ ४ ॥
बूटानां पालिशानां च धूम्रपानस्य च तथा ।
सिगरेटसिगाराणां प्रभुत्वं दृश्यतेऽधुना ॥ ५ ॥
अस्मिन्कलियुगे चाद्य देवं भक्तसेवितम् ।
फैशनं सर्वपूजार्हं वन्दे साम्राज्यदीक्षितम् ॥ ६ ॥
फैशनो हि महान् राजा फैशनो हि महान् गुरुः ।
फैशनो हि महान् नेता फैशनो हि सुहन्महान् ॥ ७ ॥
फैशनेन मही व्याप्ता फैशनेन जिता दिशः ।
फैशनेन समाक्रांतं सर्वं फैशनाश्रितम् ॥ ८ ॥
बयोवृद्धास्तपोवृद्धा विद्यावृद्धास्तथैव च ।
सर्वे फैशनवृद्धस्य द्वारे तिष्ठन्ति किंकरा ॥ ९ ॥
फैशनो हि महान्धर्मः फैशनो हि सुरालयः ।
फैशने प्रीतिमापन्ने रमन्ते सर्वदेवताः ॥ १० ॥

'सम्राट् फैशनानन्द'

---

*इसे पढ़ लीजिए, आपके काम की वस्तु है ।

मेरी भूल

(ले०—कुमारी वीरां बाई, तृतीय वर्ष)



फाल्गुन का मास प्रकृति को उतना ही प्रिय है जितना कि माता को अपना नवजात शिशु होता है। वह अपने इस नन्हे से बच्चे को भाँति २ के सुन्दर और रमणीय पदार्थों से आभूषित करती है ताकि दर्शक देखते ही इसकी प्रशंसा के पुल बांध दें। जहां वृक्षों को कोमल और पीले २ पत्तों से सुसज्जित करती है वहां उपवनों तथा वाटिकायों में सबज़ कालीन बिछाती है। नदियों और झरनों की कलकल ध्वनि इस साज में संगीत का काम देती है। यह सभी प्राणियों के हृदय-तल तक पहुंच कर उन्हें प्रकृति माता के गुणगान करने का संदेश पहुंचाती है।

सायंकाल का समय था। भगवान् सूर्य्य दिन भर थके-मान्दे होकर अस्ताचल को जा रहे थे। उनकी अन्तिम किरणें मोहिनी-पार्क के एक कोने में पहुंच कर मिस्टर सुतीश के चिन्ता-मय गम्भीर मुंह पर पड़ रही थीं मानो उनके अन्तःस्थल की थाह लेना चाहती थीं। सुतीश पार्क में घूम रहे थे। उनकी दृष्टि हाथ में पकड़े हुए एक समाचार-पत्र पर थी। ऐसा प्रतीत होता था कि वे कोई बहुत ही रोचक विषय पढ़ रहे हैं क्योंकि वे बीच २ में खिलखिलाकर हंस पड़ते थे। और प्रफुल्लित नेत्रों से इधर उधर देख लेते थे। घूमते २ वे फव्वारे के पास पहुँच गये। यहां पहुंच कर उन्होंने समाचार-पत्र बन्द कर दिया। वे एक टक फव्वारे से निकलते हुए जल का दृश्य देखने लगे। कुछ समय तक वे मानो अपने आपको भूल गये। मिस्टर सुतीश उन सज्जनों में से एक थे जिन्हें जगत की तुच्छ से तुच्छ वस्तु में भी सुन्दरता भासित होती है।

न जाने वे कब तक इसी प्रकार खड़े रहते यदि महेश के पांवों की आहट उन्हें चौंका न देती। इस समय महेश को देख कर सुतीश को कितनी प्रसन्नता हुई यह बात उनके इन्हीं शब्दों से प्रतीत होती थी।

"वाह, मित्र अच्छे आये!"

महेश—तुम यहां क्योंकर पहुंचे हो? यहां क्या कर रहे हो?

सुतीश—तुम्हारी बुद्धि और लेखनी की कितनी प्रशंसा करूं। अभी २ मैं तुम्हारा लेख "फूल" से पढ़ रहा था और सोच रहा था कि तुम अपने लेख को सरस कैसे बना लेते हो?

महेश—इस में सोचने की कौनसी बात है। बस थोड़ा सा अभ्यास चाहिये।

सुतीश—अभ्यास? यह देखो मैं प्रातःकाल से इस बाग़ में बैठा हूँ और लेख लिखने के लिये सिर पीट रहा हूँ। परन्तु, महेश, हंसी तो दूर रही यह पढ़ कर तो रोना आता है।" यह

कहते हुए सुतीश ने कुछ पन्ने महेश को दिये।

महेश ने पढ़ना आरम्भ किया परन्तु समाप्त करना उनकी शक्ति से बाहिर था। उसने सुतीश की ओर देखा। उसकी आँखों में आँसू चमक रहे थे।

"इस से बढ़कर तुम और क्या लिखोगे ?" महेश ने आँसू पोंछते हुए कहा 'सुतीश, अच्छा लेख केवल वही नहीं होता जिसे पढ़कर हंसी आये परन्तु वह भी जिसके लिये हम आँसू बहादें। लाओ, मुझे दो, मैं कल ही इसे "फूल" में प्रकाशित करवा दूँगा।

× × ×

दैनिक पत्र 'फूल' में सुतीश के लेख प्रकाशित होने लगे। जो भी उन्हें पढ़ता वह लेखक की प्रशंसा किये बिना न रहता। यहां तक कि अन्य पत्रिकाओं तथा समाचार-पत्रों के सम्पादक भी सुतीश को अनुरोध करने लगे कि वे उनके समाचार-पत्रों में भी अपने लेख छपायें। थोड़े ही समय में उसकी गणना उच्च कोटि के विद्वानों में होने लगी। कोई भी ऐसा पत्रिका-प्रिय पाठक न था जिसके मुंह पर सुतीश का नाम न हो। उधर सुतीश भी अपने मस्तिष्क की सराहना करने लगा। परन्तु वह महेश के अनुग्रह को न भूला था। वह जानता था कि महेश की ही कृपा से आज मैं इस पद पर पहुंचा हूँ। वास्तव में यदि महेश उसका पहला लेख प्रकाशित करवाने में सहायक न होता तो सुतीश जैसे निर्धन को इस संसार में उच्च स्थान नहीं मिलता। परन्तु अब कुछ दिनों से महेश के स्वभाव में अन्तर देख कर वह बहुत चिन्ताकुल होने लगा। महेश को वह प्रसन्न रखना चाहता था क्योंकि वह उसका ऋण चुकाना चाहता था। और ऐसा करने का उपाय एक ही था—मित्र-भक्ति।

× × ×

"देखा, हरीश, हमारी "कली" की कली किस प्रकार खिल रही है," महेश ने एक ऐसे छोटे से कमरे में प्रवेश करते हुए, जहां चार युवक पहले से ही विराजमान थे, कहा—"अब सुतीश में वह साहस कहां है कि लेख लिखने का नाम भी ले। हमने अपनी पत्रिका में उसके प्रतिकूल जो समालोचनायें लिखी हैं उनमें सुतीश का कैसा उपहास किया गया है !"

हरीश—"अब तो वह आकाश पर ही चढ़ा जाता है। तुम उससे कितना अच्छा लिखा करते थे। परन्तु अब तो उस के ही लेख सब स्थानों में देखने में आते हैं। आज उसका "किसकी भूल" तो देखें।

महेश—इस की तुम कुछ चिन्ता न करो। हमारी पत्रिका का तो उद्देश्य ही यही है कि उसके लेखों पर समालोचनायें लिखी जयें। अब की बार देखो मैं उस पर कैसे कटाक्ष करता हूँ। हमारी "कली" ऐसा रंग लायेगी कि सुतीश किसी को मुंह दिखाने योग्य न रहेगा।

हरीश—कहने की बात तो यह है कि उसके पांव अब धरती पर जमते ही नहीं। वह तो मानता ही नहीं है कि आप ही ने उसे आदमी बनाया है।

राकेश— ऐसा प्रायः हुआ करता है।

रामेश—वह थी क्या वस्तु ?

महेश—मुझे भी तो इसी बात का शोक है। मैंने ही उसे इस पद पर पहुंचाया और अब मेरे ही पांव में वह कुल्हाड़ी मारना चाहता है। मेरे लिये यह कितने दुःख और लज्जा जी बात है कि उसके आगे मेरा यश फीका पड़ जाये जिसकी कुछ समय पहले पत्रिका-संसार में धाक थी।

महेश अपनी बात समाप्त भी न कर पाया था कि नौकर ने कमरे में प्रवेश किया और पाँच छः लिफ़ाफ़े सम्मुख पड़े हुए एक मेज़ पर रख कर चला गया। महेश ने गर्वपूर्वक एक लिफाफा उठाया, खोला, पढ़ा और मारे प्रसन्नता के उछल पड़ा। लिफ़ाफा अपने दोस्त को देते हुए बोला—"बस, मित्र! अब तो हमारे पौं बारह। आज तो पका पकाया भोजन मिल गया है। यह "किस की भूल" पर कैसी अच्छी समालोचना लिखी हुई है और लेखक ने अनुरोध किया है कि मैं इसे अपनी पत्रिका में प्रकाशित करवा दूँ। इससे अधिक और क्या चाहिये। इसे पढ़ोगे तो मालूम होगा कि इसका एक २ शब्द चुन २ कर रखा हुआ है। लेख में कैसी चतुरता है। "किसी की भूल" की त्रुटियों और दोषों की ओर संकेत किया हुआ है। अब सुतीश की दाल नहीं गलने की।"

× × ×

महेश को प्रतिदिन एक पत्र पहुंचता जिसमें सुतीश के लेख पर टिप्पणियां होतीं। परन्तु उसे भेजने वाले का कुछ पता न चलता। इस विषय में उसके मन में कई विचारधारायें उठतीं। परन्तु वह यह न जान सका कि इस प्रकार पत्र भेजने वाले का क्या अभिप्राय है। इसमें तो कोई सन्देह न था कि वह महेश का हितैषी सज्जन ही था। पर यदि यही बात थी तो वह अपने आपको प्रकट क्यों नहीं करता था? अन्धकार में रहने का उसने क्या लाभ सोचा था? यह एक ऐसा जटिल प्रश्न था जिसका उत्तर महेश के पास न था। अपनी इस चिंता को दूर करने के लिए महेश ने "कली" में अज्ञात लेखक से मिलने की अपनी अभिलाषा प्रदर्शित की। इसके उत्तर में एक पत्र आया जिस में लिखा था—

"मैं आपकी सेवा में आज अवश्य उपस्थित हूँगा। भवदीय "वही"

यह पत्र पढ़ कर महेश के दिल का भार कुछ हलका हुआ। 'आज अज्ञात लेखक के रहस्य का उद्घाटन होगा,' यह सोच कर उसे बहुत कुछ धैर्य हुआ। वह बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगा। एक पल के लिये भी अपने कमरे से बाहर न गया। घण्टे गिनते २ तीन बज गये। अभी तक किसी के आने की सम्भावना न हुई। महेश बेचैन हो गया और सोचने लगा कि शायद पत्र में झूठी बात लिखी गई थी। इन्हीं विचारों में लीन होकर जी बहलाने के लिए उसने वाटिका में घूमने जाने का निश्चय किया। ज्यों ही वह द्वार खोलने को आगे बढ़ा त्यों ही वह स्वयं खुल गया। महेश ने देखा कि मेरे सम्मुख सुतीश खड़ा है और इसके

मुंह पर हँसी की पतली सी रेखा नाच रही है।

महेश की उस समय क्या दशा हुई, यह बात वही जानता था। उसका दिल धड़कने लगा, शरीर कांपने लगा और गला रुन्ध गया। वह थरथराती हुई आवाज़ में बोला—"तुम यहां कैसे आये?"

सुतीश—"आपके इच्छा प्रकट करने पर।"

महेश (अश्रुपूर्ण नेत्रों से)—"सुतीश, क्या मैं यह सत्य सुन रहा हूँ? तुम धन्य हो, तुम्हारा हृदय धन्य है। मुझे क्षमा करो। मैं यह नहीं जानता था कि तुम उदारता की मूर्ति हो। मुझे ही प्रसन्न करने के लिए तुम अपने ही लेखों के दोष दिखाते रहे हो। मैं बहुत लज्जित हूँ। मुझे क्षमा करो, यह मेरी ही भूल थी। आओ, आज हम फिर पवित्र हृदय से मिलें। मेरा द्वेष तुम्हारे शुद्ध स्नेह में मिल कर पवित्र हो जायेगा? आज से "कली" का सम्पादन तुम ही करो और उसे अपनी उदारता की सुगन्धि से भर दो। यह काम तुम्हीं को शोभा देता है। कहो, तुमने मेरी भूल को क्षमा कर दिया?

वियोगी हरि

वास्तविक दर्पण

तुम्हें अपना सौंदर्य ही देखना है तो उसे प्रकृति के दर्पण में क्यों नहीं देखते?

तुम्हें अपना सौंदर्य ही देखना है तो उसे हृदय के स्वच्छ दर्पण में क्यों नहीं देखते?

तुम्हें अपना सौंदर्य ही देखना है तो उसे आत्मा के निर्मल दर्पण में क्यों नहीं देखते?

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय

बालक

बालक परमात्मा का अधिक समीपी कहा जाता है। उसमें सांसारिक प्रपंच नहीं पाया जाता। जितना वह सरल होता है, उतना ही कोमल। छल उसे छूता नहीं, कपट का उसमें लेश नहीं। उसके मुखड़े पर हंसी खेलती रहती है, और उसकी चमकीली आंखों से आनन्द की धारा बहती जान पड़ती है। उसके मुस्कराने में जो माधुर्य्य है वह अन्यत्र दृष्टिगत नहीं होता। वह जितना ही भोला भाला होता है, उतना ही प्यारा। उसकी तुतली बातें हृत्तन्त्री में सङ्गीत उत्पन्न करती हैं और उसके कलित कंठ का कलनाद कानों में सुधा बरसाता है। वह दाम्पत्य सुख का सर्वस्व है, भाग्यवान् गृहस्थ के गृह का उज्ज्वल प्रदीप है और है स्वर्गीय लीलाओं का ललित निकेतन। परमात्मा का नाम आनन्द-स्वरूप है, बालक इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

महाप्रभु चैतन्य

(शम्भूनाथ काचरू—तृतीय वर्ष ।)



सुख एक मृगतृष्णा है। मनुष्य उसके पीछे पागलों की भांति दौड़ता है परन्तु असफलता के सिवाय उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता। यही असफलता मनुष्य-जीवन के अनन्त दु:ख का कारण बन जाती है। क्या मनुष्य इस असफलता के कांटे को अपने मार्ग से उठा कर दूर नहीं कर सकता? यह समस्या बड़ी जटिल और गम्भीर है। इसी समस्या को सुलझाने के लिये मनुष्य बहुत प्रयत्न करता है, परन्तु फलस्वरूप उसमें वह स्वयं उलझ जाता है। इसी तरह उसकी यह जीवन-लीला समाप्त हो जाती है।

तो क्या मनुष्य को सचमुच इसी तरह अपनी सारी जीवन-लीला समाप्त कर देनी होगी? क्या उसे स्वप्न में भी कभी सुख या शान्ति का अनुभव न होगा? होगा और अवश्य होगा। केवल उसे अनन्त और अचल सुख व शान्ति के मार्ग पर अग्रसर करने के लिये एक अनुभवी सद्गुरु की आवश्यकता है। परन्तु इस संसार में ऐसे सद्गुरु विरले ही मिलते हैं। अनेक महात्मा इस पृथ्वी पर जन्म ले मनुष्य-समाज का कल्याण कर अपना जीवन धन्य बना गये हैं। महाप्रभु चैतन्य उनमें से ही एक थे।

यवनों के संसर्ग से हिन्दु सभ्यता का सूर्य अस्त हो रहा था। यवनों के द्वारा हिन्दुओं के मन्दिर तोड़ दिये जाने लगे थे। उनको अनिवार्य रूप से अपना धर्म त्यागने तथा यवन-धर्म अंगीकृत करने के लिये विवश किया जाता था। ऐसे समय में हिन्दू धर्म को कोई सहारा न रहा। वह निराशा की गहरी सांस खींच तथा अपने दिल को मसोस कर चुपचाप अनन्त की ओर टकटकी बांधे किसी अज्ञात सान्त्वना रूपी निर्मल ज्योति की आशा करने लगा। इसी समय धर्म-क्षय-अंधकार रूपी रात्रि में भगवान् चैतन्य निर्मल चन्द्र की भांति उदय हुए। उन्होंने अपनी भक्ति तथा प्रेम की निर्मल चन्द्रिका समाज के कोने २ में फैलाई। सारा समाज फिर एक बार इस चन्द्र-छटा में जगमगाने लगा। हिन्दू धर्म कुमोदिनी की भांति फिर खिला उठा।

जन्म और बाल-जीवन

महाप्रभु चैतन्य का जन्म नवदीप बंगाल में सन् १४८५ ई० में एक ब्राह्मण कुल में हुआ। इनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र तथा माता का नाम शची था। बाल्यकाल से ही ये बड़े चंचल तथा नटखट थे। इनके सुन्दर रूप, घुंघराले बाल हृष्ट-पुष्ट शरीर तथा बाल-सुलभ चंचलता आदि को देख कर श्रीकृष्ण की बाल-लीला का स्मरण हो आता था। जब इन्होंने पांचवें वर्ष में

पदार्पण किया तो इनको एक पाठशाला में विद्याभ्यास करने के लिये भेज दिया गया। नवद्वीप उन दिनों विद्या का एक बड़ा केन्द्र था। इन्होंने इस छोटी सी अवस्था में ही अपनी तीव्र बुद्धि का परिचय दिया। अतः ये थोड़े ही काल में व्याकरण और वेदांत आदि के अच्छे ज्ञाता बन गये।

परिवर्तन

हिन्दू समाज की प्रथा के अनुसार इनका विवाह चौदह वर्ष की उम्र में कर दिया गया। अभी इनकी आयु तेरह वर्ष की ही थी कि इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। इससे इनको बड़ा धक्का पहुँचा। अब यह गार्हस्थ्य-जीवन इनको भार स्वरूप मालूम होने लगा। इतने में इन्होंने देश में भ्रमण करने की ठानी। इन्होंने लगभग समस्त बंगाल की यात्रा पूर्ण करली। कई जगह इन्होंने बड़े बड़े विद्वानों से शास्त्रार्थ भी किया और उन पर विजय भी पाई। इस यात्रा के पश्चात् ये घर लौटे, परन्तु फिर भी इन का मन सांसारिक कामों में न लगा। अतः इन के हृदय में वैराग्य के भाव उठने लगे। अन्त में इन्होंने पच्चीस वर्ष की आयु में गार्हस्थ्य-जीवन को त्याग कर संन्यास धारण कर लिया।

भक्ति और प्रेम का मार्ग

भगवान् चैतन्य का कोमल हृदय ग़रीबों का दुःख, दारिद्रय आदि देख कर एकदम पिघल जाता था। वे सदा इसी चिन्ता में रहते थे कि इस जन-समाज का उद्धार कैसे हो सकेगा। निदान इन्होंने मार्ग ढूंढ़ निकाला। इस समय भारत में भक्ति-मार्ग के अनुयायियों की दो शाखायें थीं। पहिली का संबन्ध निर्गुणोपासना तथा दूसरी का सगुणोपासना से था। इन्होंने दूसरी ही को अधिक प्रधानता दी। चूंकि साधारण जन-समूह के लिये निर्गुणोपासना की पहिली सीढ़ी पर चढ़ना भी असम्भव और दुर्लभ था इस लिए उसके लिये तो सगुणोपासना का मार्ग ही सुगम तथा कल्याण-कारी सिद्ध हुआ। इन्होंने इसी सगुणोपासना की लहर में मानव समाज को बहा दिया। श्रीकृष्ण की भक्ति का ही पाठ लोगों को पढ़ाया। ये स्वयं भी इस रंग में रंग गये तथा औरों को भी अपने साथ रंग दिया।

इन्होंने भगवद्भक्ति को ही मुक्ति का मुख्य मार्ग बतलाया है। बंगाल के निवासी इन को भगवान् कृष्ण का अवतार मानते हैं और इन की पूजा करते हैं। निमई पुराण और निमई भागवत आदि ग्रंथों के अवलोकन से भी इस बात का समर्थन होता है।

नरेन्द्र

(लेखक—कन्हैयालाल पांड्या)



संध्या का समय था। नवम्बर के दिन थे। भगवान् सूर्य धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर रहे थे। उनकी अंतिम किरणें वृक्षों तथा पहाड़ों के शिखरों पर पड़ रही थीं। आकाश में चारों ओर लालिमा छा गई थी। पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड कलरव कर अपने घोंसलों की ओर उड़े जा रहे थे। कॉलेज के विद्यार्थी नवीन स्फूर्ति से कॉलेज प्ले ग्राउण्ड (क्रीड़ा-स्थल) में कोलाहल कर दौड़-धूप कर रहे थे। कोई हॉकी खेल रहा था तो कोई फुट-बॉल और कोई टेनिस। अस्तु, वे अपने २ खेल में निमग्न थे। इतने में भगवान् सूर्य धीरे धीरे पूर्ण रूप में अस्त हो गये। प्रति-पल अंधकार बढ़ता गया। कॉलेज के विद्यार्थी खेल की समाप्ति होते ही कपड़े पहन अपने २ घरों की ओर चल पड़े।

नरेन्द्र और रजनी भी अपनी २ सायकल तथा टेनिस रैकेट ले घर की ओर रवाना हो गये। सड़क के दोनों ओर वृक्षों की सुन्दर कतारें लगी हुई थीं। कुछ पत्ते सड़क के दोनों ओर बिखरे पड़े थे। नरेन्द्र और रजनी सायकल पर द्रुगति से चले जा रहे थे, क्योंकि अन्धकार के साथ २ सर्दी भी बढ़ रही थी और कुहरे के बढ़ जाने की सम्भावना थी। अचानक वे दोनों सड़क के मोड़ पर चौंक कर रुक गये। उन्होंने देखा कि कुमार अपनी हॉकी-स्टिक लेकर सड़क के मध्य में खड़ा है। नरेन्द्र ने पूछा—"क्यों कुमार, किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो?" कुमार चुप रहा, केवल उसके क्रोध-पूर्ण नेत्रों ने उसका उत्तर दे दिया। इतने में उसने नरेन्द्र पर प्रहार करने के लिये अपनी हॉकी-स्टिक उठाई। नरेन्द्र सम्हल गया। रजनी कांप गई। उसके चेहरे की लालिमा एकदम न जाने कहां उड़ गई। नरेन्द्र ने फुर्ती से अपनी सायकल रजनी को पकड़ा उसकी हाकी-स्टिक अपने हाथों से रोक ली और कहा—"कुमार! आज तुमने शराब तो नहीं पी है?" कुमार ने क्रोध के आवेग में उत्तर दिया—

"नरेन्द्र, जानते हो किसके साथ बातें कर रहे हो? ज़रा तमीज़ सीखो।"

नरेन्द्र—"कुमार, बस अधिक न बोलो! मैं जानता हूँ कि तुम नीतिज्ञ हो। मुझे तुम्हारे तमीज़ सिखलाने की कोई आवश्यकता नहीं।"

कुमार—"नरेन्द्र, तुम व्यर्थ बात को बढ़ा रहे हो, फिर मुझे दोष न देना। झगड़े की जड़ असल में तुम्हीं हो।"

नरेन्द्र चौंक कर बोला"—मैं?"

कुमार—"हां, तुम।"

नरेन्द्र—"कुमार, तुमने यह कैसे कहा?"

कुमार—"बतलाऊँ !"

नरेन्द्र—"हां हां, जो हो सो साफ़ २ बतलादो। उसमें हिचकने की कौनसी बात है।"

कुमार—"मैंने तुमसे क्या कहा था !... (रजनी की ओर संकेत करके)..."कि इनका साथ तुम छोड़ दो। फिर तुमने क्या माना ?"

नरेन्द्र—"तो इसमें हस्तक्षेप करने वाले तुम कौन हो ? इनका साथ चाहे छोड़ूं चाहे नहीं। मेरा दिल...।"

कुमार—"नरेन्द्र, यह ख्याल न करना कि मैं तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता। अभी सब अकड़ मिट्टी में मिल जायगी।

नरेन्द्र—"कुमार, तुम यह ख्याल करते होगे कि तुम मुझे धमकी देकर डरा दोगे। वह बात छोड़ दो। मैं तुम्हारी गीदड़-भभकियों में आने वाला नहीं। जब मैं सच्चे मार्ग पर चलता हूँ तो मुझे किसका डर है। चाहे संसार हमें किसी दृष्टि से देखे पर हम दोनों का सम्बन्ध शुद्ध प्रेम का है। यह मेरी बहिन है।"

कुमार—"अधिक न झांको...—जानता हूँ कि इस शुद्ध और निःस्वार्थ प्रेम के पर्दे के पीछे क्या कुछ है।

नरेन्द्र—"बस ! कुमार, इसके आगे न बढ़ो, नहीं तो ठीक न होगा।"

कुमार—"ठीक हो या नहीं, यह तो फिर देखा जायगा। मैं तुम्हें एक बार फिर कहता हूँ कि आज से तुम्हें रजनी का साथ छोड़ देना होगा।"

नरेन्द्र—"बिल्कुल असम्भव।"

कुमार—"अच्छा, तो फिर लो" इतना कह कर उसने अपनी हॉकी-स्टिक उठा कर नरेन्द्र के पैरों पर ज़ोर से मारदी और फिर तेज़ी से भाग गया। नरेन्द्र के नेत्रों में अंधकार सा छा गया। वह चक्कर खाकर धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। रजनी घबरा उठी। इतने में रमेश अपने दो एक मित्रों के साथ इधर ही आते हुए दीख पड़ा। रजनी ने रमेश को समीप आते देख कर एकदम चीत्कार मार कर पुकारा—"रमेश—!" और उसके नेत्रों से गरम २ आंसुओं की धारा बह चली। रमेश ने रजनी को धैर्य बंधाया और नरेन्द्र को उठाकर और अपनी सायकल पर बिठा कर अपने मित्रों की सहायता से कुशलता-पूर्वक उसे अपने घर पहुंचा दिया।

नरेन्द्र कॉलेज का विद्यार्थी था। इस वर्ष वह चतुर्थ वर्ष में पढ़ रहा था। रजनी और कुमार उस के सहपाठी थे। नरेंद्र पढ़ने में बड़ा पटु था। वह हमेशा अपनी क्लास में प्रथम रहता था। इतना ही नहीं, उसमें और भी कई सद्‌गुण थे। वह बड़ा मिलनसार था। अपने मित्रों, सहपाठियों तथा अध्यापकों के साथ सदा सभ्यता और सुशीलता का व्यवहार करता था। इसी कारण छात्र वर्ग तथा अध्यापक दोनों उसके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। कुमार हॉकी का एक अच्छा खिलाड़ी था। गत वर्ष उसे युनिवर्सिटी की ओर से (Championship) की उपाधि मिली थी। इससे उसकी लोकप्रियता और भी बढ़ गई थी। उसे इसी

कॉलेज से छात्र-वृत्ति भी मिला करती थी। रजनी एक भोली भाली लड़की थी, परन्तु पढ़ने में बड़ी चतुर थी। वह कॉलेज में सीधी आती और सीधी घर चली जाती थी। वह न किसी से बोलती और न किसी से हंसी-दिल्लगी आदि ही करती थी। यदि कोई उसे कुछ पूछता भी तो वह उस का उत्तर नम्रता से देकर फिर अपने काम में लग जाती थी। यों तो रजनी का कोई साथी न था परन्तु बहुधा वह नरेन्द्र से मिलती जुलती रहती थी क्योंकि नरेन्द्र एक ऐसा व्यक्ति न था जिससे मिलने में उसे स्वाभाविक संकोच उत्पन्न होता। दोनों की प्रकृति एक दूसरे से मिलती जुलती थी। उन दोनों का आपस में भाई-बहिन का सा प्रेम था। परन्तु उनका मिलना जुलना और प्रेम देख कर कुछ विद्यार्थी नाक भौं सिकोड़ते थे। कुमार उन में से एक था। वह रजनी के रूप-लावण्य पर मुग्ध था। किसी तरह रजनी को वह अपने अधिकार में देखना चाहता था, यद्यपि यह उसकी बड़ी भारी भूल थी। इसी लिए वह नरेन्द्र को अपना शत्रु समझने लगा था।

अस्तु, दूसरे ही दिन यह खबर कॉलेज भर में फैल गई। इसकी रिपोर्ट प्रिन्सिपल साहिब तक पहुंची। प्रिन्सिपल साहिब ने इस मामले की जाँच-पड़ताल करने के पश्चात् यह निश्चय किया कि कुमार की छात्रवृत्ति और फ्रीशिप दण्ड-स्वरूप बंद कर दी जाय। कुमार के लिए यह बड़ा भारी धक्का था, क्योंकि उसका पिता कोई ऐसा धनाढ्य तो था नहीं जो उसे अपने बल पर पढ़ा सकता। जो कुछ सहायता उसे मिलती थी वह कॉलेज से ही प्राप्त होती थी। कालान्तर में वह छात्रों तथा अध्यापकों से घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। कुमार का अब कोई साथी न रहा। कॉलेज में वह अकेला आता और अकेला चला जाता। ऐसी परिस्थिति में वह कुछ अनमना सा रहने लगा। उसकी उदासीनता दिन प्रति दिन बढ़ती गई।

एक दिन यों ही कुमार की दृष्टि नोटिस-बोर्ड पर पड़ी। उस पर लिखा था कि विद्यार्थियों को इस बात की सूचना दी जाती है कि वे युनिवर्सिटी-परीक्षा-शुल्क और मासिक फीस आदि की सारी रक़म अमुक तिथि तक दफ्तर में अदा करें।

उद्विग्न बने हुए कुमार के लिये यह सूचना आनन्द-दायक न थी। उसकी चिन्ता और भी अधिक बढ़ गई। वह चुपचाप वहां से चला और चल कर कॉलेज के बगीचे में एक झुरमुट के नीचे, किताबें एक ओर रख कर बैठ गया। उसके रूखे व उदासीन नेत्र अनन्त की ओर जा लगे। ईश्वर से मूक शब्दों में मन ही मन क्षमा मांगी और फिर सोचने लगा—"मैंने कैसा पागलपन किया। नरेन्द्र ने मेरा क्या बिगाड़ा था जो मैंने उससे शत्रुता बाँधी। और रजनी—यह कैसी भोली भाली तथा पवित्र आचरण वाली है। और मैं कैसा कठोर और कलुषित हूँ। मैंने जो अनुचित व्यवहार किया उसका परिणाम यह हुआ कि मैं सबों की घृणा का पात्र बना तथा अपने हाथों ही अपने पैर पर

कुल्हाड़ी मारी। खैर, यह सब दोष किसी और के नहीं मेरे ही हैं।" कुमार के नेत्रों से आंसू उमड़ पड़े। उसका हृदय पश्चाताप की अग्नि से जला जा रहा था। उसका मुँह लाल हो गया, मानों उसने अपने सारे पापों का प्रायश्चित करके उन्हें पश्चाताप की अग्नि में जला कर भस्म कर दिया था। उसका हृदय निर्मल हो गया। अन्त में अपने आपको रोक कर उसने रूमाल से आंसू पोंछे और घर के लिये रवाना होने लगा। ज्यों ही वह उठा तो पीछे मुड़ कर क्या देखता है कि नरेन्द्र झुरमुट की आड़ में न जाने कब से खड़ा है। कुमार सहम गया। नरेन्द्र ने धीरे से पुकारा—'कुमार'। कुमार चुप रहा। वह आगे न बढ़ सका और मूर्ति की भाँति खड़ा रहा। उसकी दृष्टि पृथ्वी में मानों लज्जा के मारे गढ़ सी गई। नरेन्द्र ने धीरे से आकर और उसके बायें कंधे पर हाथ रख कर कहा—"क्यों, तबियत तो अच्छी है न?" कुमार ने एक लम्बी आह भर कर कहा—"हां!"

नरेन्द्र—"तो फिर आज तुम इतने अनमने से क्यों दिखलाई देते हो?"

कुमार—"कुछ नहीं।"

"फिर भी…।" नरेन्द्र ने आश्वासन भरे शब्दों में पूछा।

कुमार—"नरेन्द्र, मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया। क्या तुम मुझे……?" यह कहते कहते कुमार का गला रुंध गया। वह आगे न बोल सका। फिर अपने आपको सम्भाल कर कहने लगा—"नरेन्द्र, वह मेरा पागलपन था, उस दिन मुझे न जाने क्या सूझी थी जो तुम मेरे क्रोध के शिकार बने। खैर, मैंने अपने किये का फल पा लिया।"

नरेन्द्र ने कहा—"कुमार, अब उन बातों को बिल्कुल भूल जाओ। उनका बार २ स्मरण करके अपनी आत्मा को व्यर्थ ही ग्लानि की ज्वाला में क्यों जलाते हो? यह तो मनुष्य की स्वाभाविक कमज़ोरी है कि वह कभी ग़लती कर बैठता है। फिर, हम तो भाई भाई हैं। दिन में दस बार झगड़ते हैं, फिर आपस में प्रेमभाव होता है।"

कुमार—"नरेन्द्र, मनुष्य में इतनी शक्ति कहाँ, जो वह प्रकृति के नियमों का भङ्ग कर दे। उसे अपने किए पर तो पश्चाताप अवश्य होता है।"

नरेन्द्र—"फिर भी, कुमार! मनुष्य को सम्पूर्ण रूप में निराशावादी नहीं हो जाना चाहिये। नहीं तो उसे अपना जीवन भार-स्वरूप लगेगा। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह सदा प्रसन्न-चित्त रहने का प्रयत्न करे।

कुमार—"नरेन्द्र! प्रसन्नता की प्राप्ति कोई आसान बात नहीं। वह तो भाग्यवान को ही प्राप्त होती है।"

नरेन्द्र—"नहीं, कुमार! वह सब को प्राप्त हो सकती है, केवल साधना करने की आवश्यकता है।

कुमार—'और मेरी समझ में 'पश्चाताप जैसी और कोई साधना नहीं, क्योंकि इसमें मनुष्य के सभी मानसिक विकार भस्म हो जाते

हैं और हृदय निर्मल हो जाता है।

नरेन्द्र ने कुछ हंस कर कहा--"अब तुमने अपने सब पाप धो लिये और तुम्हारी आत्मा निर्मल तथा पवित्र बन गई। अच्छा, यह तो बतलाओ कि तुम्हारी उदासीनता का मुख्य कारण क्या है ?

कुमार—"नरेन्द्र, तुम्हें मालूम ही है कि मेरी पढ़ाई का निर्वाह अपनी छात्र-वृत्ति पर ही होता था। अब वह बंद हो गई है और उसके साथ ही फ्रीशिप भी। परीक्षा समीप आ रही है और मुझे कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूं।

नरेन्द्र—"बस, इतनी सी बात पर इतना घबराते हो ! चिन्ता न करो।

नरेन्द्र ने सहायता का वचन दे कर उसे धैर्य बंधाया। उसे कुमार की दयनीय दशा देख कर बड़ी तरस आई। यद्यपि कुमार ने उसके साथ कोई अच्छे सम्बन्ध स्थापित नहीं किये थे तो भी नरेन्द्र का हृदय उदार था। वह प्रेम का पुजारी था, द्वेष का नहीं। इतने में नरेन्द्र का घर समीप आ गया। उसने कुमार से विदा ली और कहा—"घबराने की कोई बात नहीं, सब कुछ ठीक हो जायगा।" कुमार ने अपने सजल नेत्रों से उसको धन्यवाद दिया।

———

श्रीयुत सुदर्शन

दीपमाला की रात

दीवाली की रात ! तेरे अन्धकार में मुझ से मेरा प्रियतम बिछुड़ गया। तूने आकर संसार पर अन्धकार का आवरण डाल दिया। और संसार से अन्धकार मिटाने वाले को मिटा दिया। तू चली गई। प्रातःकाल हुआ परन्तु वह चांद फिर किसी को नज़र न आया। हाथों ने सीना कूटा। आंखों ने मातम किया। दिलोंने खून के आंसू बहा दिये और दूसरों ने शोकातुर हो आकाश की ओर देखा परन्तु वह उज्ज्वल तारा जो तेरे अंधेरे में लुप्त हो चुका था फिर किसी आंख ने नहीं देखा।

श्री जयशङ्कर प्रसाद

निकल होकर नित्य चंचल, खोजती जब नींद के पल।
चेतना थक सी रही, तब मैं मलय की बात रे मन ॥
चिरविषाद विलीन मन, इस व्यथा के तिमिर बन की।
मैं उषा सी ज्योति-रेखा, कुसुम विकसित प्रात रे मन !
तुमुल कोलाहल कलह में—मैं हृदय की बात रे मन ॥

———

दुःख के आंसू

[लेखक—श्रीयुत 'निराशावादी]

१

इस जगती में कौन किसी का
ईश्वर पालनहार।
मूर्ख ! पापी ! क्या करता है
किसे करता प्यार।

२

किस की सुध में नस दिन रोकर
तड़प तड़प रह जाते।
कौन है तेरा अपना जग में
झूठे रिश्ते नाते ॥

३

दुनिया सारी मतलब की है
मतलब के सब यार।
मूर्ख है तू मचल रहा क्यों ?
सुख के हैं दिन चार ॥

४

किसकी आशा मन में तेरे
करती है विश्राम।
कामी बन्दे ! आशा क्या है
जीवन की इक शाम ॥

५

कौन है किसका प्रभु बिन जग में
कौन है तेरा मीत।
'अपना', 'मेरा' क्यों करता है
वृथा हैं ये गीत ॥

६

तुम ने आकर फिर मरना
अटल जगत की रीत।
तड़प रहीं क्यों मन में तेरे
आशाएं विपरीत ॥

७

प्रेमी प्रेम की मदिरा पीकर मस्त हुए अवसान।
प्रीति में दुःख है फिर सुख कैसा मूरख प्राणी ! जान ॥

❀ आप के लिखने से तो ऐसा विदित होता है कि आप अत्यंत निराश हो चुके हैं, किन्तु आप की आकृति से तो ऐसा दीख ही नहीं पड़ता— —सं०

सुख

(ले०—कुमारी कान्ता मलिक, तृतीय वर्ष)

वसन्त ऋतु थी। चारों ओर भिन्न २ प्रकार के रंग बिरंगे और सुगंधित फूल खिले हुए थे। पक्षी वृक्षों की डालियों पर चहचहा रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रकृति प्रसन्न हो कर मनोहर गीत गा रही है। राकेश के हृदय में उस मनो-मुग्धकारी दृश्य में हिल मिल जाने की इच्छा थी। उसके नेत्र एक एक दृश्य को बार बार देख कर थकते न थे। उसके कान प्राकृतिक गायन की ओर लगे हुए थे। वह इन्हीं बातों में कुछ ऐसा तल्लीन हुआ कि उस का हृदय सागर की तरह हिलोरें लेने लगा, क्योंकि उसे प्रसन्नता का चन्द्र दृष्टि-गोचर हो रहा था।

वह मन ही मन गुनगुना उठा।

"अहा" उसने सोचा, "दुख है कहां ? अपने आप को दुःखी मानना तो मनुष्य की बड़ी भूल है। अगर हम अपनी इस वर्तमान स्थिति पर संतोष न करते रहें तो अच्छे से अच्छे काम में भी हमें अवश्य दुःख ही प्रतीत होगा।"

"राकेश" किसी ने पुकारा।

"अरे रतन ! वाह, तुम इतने निकट पहुंच गये और मैंने तुम्हें देखा ही नहीं।"

"देख कैसे पाओगे, राकेश। तुम न जाने किन विचारों में मग्न रहते हो ?"

"तुम ने अभी मग्न होने का रस नहीं पाया है, तभी तो ऐसा कहते हो।" फिर ज़रा गम्भीर होकर बोला—"तुम से एक आवश्यक बात पूछनी है।"

"क्या"

मोहन चन्द्र तुम्हारा मित्र है न ?"

"है तो सही, किन्तु इस बात के पूछने का क्या प्रयोजन है ?"

"उस से कहना कि वह कुसंगति से बचने की चेष्टा करे। कल उसके पिता जी उस के बारे में मुझ से कुछ पूछ रहे थे, पर मैंने उन्हें टाल दिया। मैं यह अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मैं उसे सचेत कर दूँ।

"तुम ने उसे कुछ करते देखा है ?"

"हाँ, कल कॉलेज में वह सायंकाल को कुछ मित्रों के संग जुआ खेल रहा था। जानते भी हो कि जुआ ही सब दोषों और दुःखों का कारण होता है।"

रतन ने कहा—"बहुत अच्छा, मैं उसे समझा दूंगा।"

राकेश आगे बढ़ गया।

× × × ×

मोहन चन्द्र धीरे से बोले—"अच्छा, राकेश बाबू की आज्ञा है कि मैं सम्भल जाऊँ और उन्हें प्रसन्न करने के लिये तुम उनके दूत बन कर आये हो।"

रतन—"न, मैं उनका दूत बनकर नहीं आया

हूँ पर जो कुछ उन्हों ने कहा है उसे तुम्हें सुनाना उचित ही मालूम होता है।

इस बात के लिये तुम्हारा धन्यवाद। परन्तु उन्होंने मुझ में कौन सा दोष देखा ? हां, कल जब मैं कुछ मित्रों के साथ हंसी-मख़ौल करके अपना विनोद कर रहा था तो शायद मेरा वह व्यवहार उसे अच्छा न लगा होगा। पर उसे बुरा मानने की कौन सी बात थी। वह तो विनोद का एक अच्छा, निर्दोष और सुन्दर साधन था।

रतन—"नहीं चन्द्र, राकेश ने उस बात के विषय में कुछ नहीं कहा। उस ने तुम्हें कहीं जुआ खेलते देखा है।"

यह सुन कर चन्द्र को ज़रा प्रसन्नता हुई, परन्तु लज्जा से उस का मुख लाल हो उठा। फिर वह कह उठा कि खैर यह मामूली बात है। बचपन में लड़के खेला हीं करते हैं और ये खेल-कूद से आनन्द उठाने के दिन भी कब तक रहेंगे। बड़े हो जायेंगे तो यह आदत स्वयं ही छूट जायगी।

क्षण भर के बाद चन्द्र ने रतन की ओर देख कर कहा कि मैंने कुछ लेख लिखने हैं। कॉलेज की पत्रिका कल छपने के लिए भेजी जा रही है। इच्छा है कि अभी कुछ लिख डालूं। तुम ज़रा उस कुर्सी पर बैठ जाओ।

रतन जानता था कि चन्द्र का कुछ महीनों से सम्पादक के रूप में इतना आदर हुआ है कि अब उसे अभिमान होने लगा है। उसने धीरे से कहा—"बैठूं गा नहीं, घर जाऊँ गा क्योंकि मुझे भी कुछ काम करना है" चन्द्र ने मुस्कुरा कर कहा—"राकेश के पास जाना है क्या ?" रतन समझ गया कि यह व्यंग्य-वचन है, इस लिये उत्तर दिये बिना ही चुप चाप बाहर निकल गया।

× × × ×

रतन ने राकेश के हाथ में कॉलेज-पत्रिका देते हुए कहा—"कुछ पढ़ा है ?"

"हां सब कुछ।"

"यह क्या, सारा पढ़ चुके ? क्या तुम ने देखा कि तुम्हारे बारे में कैसी कहानी लिखी हुई है, कैसे असभ्य विचार व्यक्त किये गये हैं, कैसी अश्लील भाषा का प्रयोग किया गया है, यहां तक कि नाम का उल्लेख भी स्पष्ट रूप से हुआ है। फिर भी तुम उसे कुछ कहते सुनते नहीं।"

"कहने की आवश्यकता ही क्या है ?"

"वाह, सारा कॉलेज तुम्हारी ओर देख कर मुस्कुराता है और तुम चुप चाप देख रहे हो। मैं कहता हूँ कि कुछ लड़कों के सम्मुख चन्द्र को डांट बताओ, ताकि सब समझ जायें कि तुम में भी कुछ आत्माभिमान है ?"

"देखो, रतन, चन्द्र को डांट बताना व्यर्थ है। अभी वह अबोध है, कुछ समझता नहीं। कालांतर में आप समझ लेगा। फिर वह अपने कार्यों पर आप ही पश्चाताप करेगा।"

"भाई, तुम्हारे विचार तुम्हें ही सुख दें। मेरा तो यह पक्का विचार है कि इस रीति से संसार के कार्य नहीं चल सकते।" राकेश ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुप चाप मुस्कुराता हुआ बैठा रहा।

रतन क्रोध से बाहर चला गया।

× × × ×

हाल खचाखच भरा हुआ था। लड़के ज़ोर से बातें कर रहे थे। आज यहां किसी ने युद्ध पर व्याख्यान देना था। इन दिनों चीन और जापान में युद्ध छिड़ गया था, इस कारण प्रत्येक मनुष्य इस विषय का ज्यादा से ज्यादा ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखता था।

व्याख्यान शुरू हुआ। सारे हाल में सन्नाटा छा गया, यहाँ तक कि यदि सूई भी नीचे गिरती तो उस का शब्द भी सुनाई दे सकता। राकेश को सारे व्याख्यान में यदि कोई बात अच्छी लगी तो वह यह थी कि युद्ध का होना ही बुरा है। चाहे किसी से अन्याय हो या न्याय, पर यदि एक बार एक पक्ष ढीला पड़ जाये तो अवश्य ही उसके सब हितैषी हो जायेंगे और फिर दूसरे पक्ष की यह हिम्मत ही न रहेगी कि वह युद्ध करे।

व्याख्यान खतम हुआ। थोड़ी देर के पश्चात् एक प्रोफेसर ने उठकर कहा—"हम देखते हैं कि हमारी पत्रिका का कार्य्य बढ़ रहा है। यह कार्य अब मोहनचन्द्र से भली भाँति नहीं हो सकेगा। इस बात का हमें परिचय भी मिल चुका है। हम अब यह कार्य राकेश को सौंपना चाहते हैं। वह इसके लिये हर प्रकार से योग्य है। हम उससे पूछते हैं कि उसकी क्या राय है।"

राकेश ने चन्द्र की ओर देखा और सोचने लगा—"मान लूँ? चन्द्र को परास्त करने का क्या अच्छा समय है!" पर फिर उसने सोचा—"अरे, मैं यह क्या करने लगा था। चन्द्र की क्या दशा होगी! उसका दुःख मुझे हर समय अशान्त करेगा।" उसने उठकर धीरे से कहा—"मैं इस कार्य के योग्य नहीं हूँ। इस लिये मुझे क्षमा किया जाये।" सब लड़के यह सुनकर तालियां बजाने लगे। तालियों की ध्वनि से सारा हाल गूँज उठा। यही निश्चय हुआ कि चन्द्र ही सम्पादक का काम करता रहे। उसकी आंखों में आंसू आ गये। उसका सिर झुक गया।

रतन आकर ज़ोर से राकेश से लिपट गया और कहा—"भाई, आज तो तुमने कमाल कर दिया। हर जगह तुम्हारी चर्चा हो रही है। चन्द्र तो तुम्हारे गुणों को गाकर थकता नहीं!" राकेश के हृदय में बड़ी शान्ति और सुख का आभास होने लगा। उसने सोचा "सुख किसमें है, बड़ा बनने में, या छोटा बनने में?"

———

शिक्षा का ध्येय

(१) विद्यार्थी कहता है—किताबें
(२) विद्वान कहता है—ज्ञान
(३) उपदेशक कहता है—स्वभाव
(४) मंत्री कहता है—सेवा
(५) वेदांती कहता है—सत्य
(६) चित्रकार " "—सुन्दरता
(७) सांसारिक मनुष्य " "—आराम
(८) संन्यासी " "—संयम
(६) योगी " "—त्याग
(१०) राजा " "—राज-भक्ति
(११) देश-सेवक " "—देश-भक्ति
(१२) न्यायाधीश " "—न्याय
(१३) वृद्ध कहता है—अनुभव
(१४) युवक कहता है—आवेगा
(१५) सैनिक " "—धीरज
(१६) सम्पादक " "—कामयाबी
(१७) शिल्पज्ञ " "—उत्तमता
(१८) बैंकर " "—धन
(१६) कवि " "—भाव
(२०) शिशु " "—क्रीड़ा
(२१) कारोबारी पुरुष " "—कर्म
(१२) मित्र " "—मैत्री
(२३) आचार्य " "—योग्यता
(१४) वैद्य " "—स्वास्थ्य

(उद्धृत)

समाज की भेंट

(ले०—द्वारिका नाथ भट्ट, तृतीय वर्ष)

संध्या का समय था। गगनस्थल पर कहीं कहीं श्वेत वर्ण के मेघ शोभायमान थे, मानो श्याम वर्ण की मखमल की चादर पर श्वेतवर्ण के पुष्प जुड़े हुए थे। पशु और पक्षी अपने अपने स्थानों पर आने के लिए आतुर थे। लोग भी दिनभर की थकान के कारण अपने २ घरों को लौटने के लिये उद्यत थे। शहर के मन्दिरों में भक्तजनों की गूंज होरही थी।

मैं उसी समय भ्रमण करने को निकला। वास्तव में मुझे किसी एकान्त स्थान को जाने की इच्छा थी। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था, मानों घरों में भी कोई नहीं था। परन्तु एक दो घरों में बच्चों के रोने की आवाज़ सुनाई देती थी। मैं तो कोई आधमील ही चला था कि सारे भूस्थल पर स्याही छाने लगी। मैंने सोचा कि घर लौट आऊँ परन्तु साथ ही विचार आया कि भगवान् चन्द्रमा अपनी शीतल, उज्ज्वल और शोभायमान किरणों से जगत को अभी तृप्त करने वाले हैं। इस लिए यही निश्चय हुआ कि दो चार

क़दम और चलकर गृहस्थ के धन्धे से थोड़े समय के लिए छुटकारा पाऊँ।

अभी कुछ दस बीस क़दम ही चला था कि मेरे कानों में रोने की एक करुण ध्वनि सुनाई दी। मैं ने इस एकान्त स्थान में इस करुण ध्वनि को अपना ही दुर्भाग्य समझा। किन्तु मुझे क्या पता था कि इस में कितना रहस्य है। मैं इस ध्वनि की ओर ही चला और तुरंत ही इस के समीप पहुँच गया। यह आर्त स्वर अब भी वैसा ही था जैसा कि मैंने पहले सुना था किन्तु अब यह पहले से अधिक स्पष्ट दीख पड़ता था मुझे पूरा विश्वास हुआ कि दुःख मुझे यहां भी नहीं छोड़ता है और यह छाया की तरह मेरा पीछा करता है। मैं समझता था कि मुझ जैसा दुःखी और कोई नहीं होगा किंतु अब मुझे मालूम हुआ कि यह मेरी भूल थी।

इतने में उदयाचल से उज्ज्वल तथा शीतल किरणों वाले भगवान् चन्द्रमा का उदय हुआ। सारा भूगोल इस से उज्ज्वल हुआ। सब कुछ स्पष्ट दिखाई देने लगा। मैं ज्योंही उस स्थान पर पहुँचा त्योंही सहमा हुआ पीछे हटने पर उद्यत हुआ। परन्तु एक धीमी ध्वनि में मुझे ये शब्द सुन पड़े—"डरो नहीं! मैं भी तुम्हारा ही भाई हूँ।" इससे मेरा धीरज बंध गया। मैं आगे बढ़ा तो देखा कि एक वृक्ष के नीचे एक छोटा सा बच्चा रो रहा है। इसके समीप ही एक पचास साल का बूढ़ा मनुष्य फटे पुराने चीथड़े पहने हुए बैठा है। इस बच्चे ने एक लम्बा सा कपड़ा पहना हुआ था जो कि उसके आधे शरीर को ही ढाँप सकता था। ऐसा जान पड़ता था कि यह उस मनुष्य की पगड़ी है।

यह तो पहिला अवसर था कि जब मैं ने ऐसी अवस्था में किसी को देखा। ऐसे दृश्य का ख्याल भी मेरे मन में कभी न आया था। मैं तो सदा अपने दुर्भाग्य को ही कोसता रहता था और समझता था कि ईश्वर ने मुझ को ही इसका पात्र बनाया है। किन्तु अब इस बात का प्रमाण मिला कि मुझ से भी अधिक दरिद्र और दीन लोग इस संसार में है। मैं ने उस व्यक्ति से पूछा—"आप कौन हैं, आप इस अवस्था में क्यों पड़े हैं। और यह बच्चा इस प्रकार क्यों रो रहा है?" उस आदमी ने पहले तो कहने में संकोच किया, पर मेरे आग्रह करने पर वह यों बोला।

मैं तो आप के ही नगर का रहने वाला हूँ। मैंने आपके पूर्वजों के साथ बहुत दिन सुख से व्यतीत किये। अब दुर्दिन आने से मेरी यह दशा हुई है। यह बच्चा तो मेरा लड़का है। इसकी माँ मर गई है और यह उसको ढूंढ़ रहा है।"

मेरे प्रश्नों का जवाब जब उसने इन थोड़े से शब्दों में दे दिया तो मुझे ऐसा दीख पड़ने लगा कि यह कोई विज्ञ पुरुष है। परन्तु मेरी उत्सुकता इन दो चार बातों के सुनने से ही शान्त न हुई। मेरे आग्रह करने पर वह फिर कहने लगा—

"बेटा, मेरी राम-कहानी सुनकर तुमको सुख नहीं होगा परन्तु तुम्हारे आग्रह करने पर मैं इसे कहता हूँ। लो, सुनो—

मैं आज से पचीस वर्ष पहले तुम जैसा युवक था। मेरा विवाह एक सुशील और कुलीन कन्या के साथ हुआ। व्याह के पांच ही वर्ष पश्चात् वह स्त्री रोग-ग्रस्त होकर स्वर्ग को पधारी। मुझे धन की कमी न थी। इसलिए दूसरे विवाह की तैयारी होने लगी। दो वर्ष के पश्चात् एक सुन्दर बालिका से मेरा पाणि-ग्रहण हुआ। हमारा जीवन सुख से बीतने लगा। हमारे यहाँ एक कन्या का जन्म हुआ। ऐश्वर्य और सुख के कारण वह तो दिनों में ही बढ़ गई। दुर्भाग्य-वश उन्हीं दिनों मुझे नौकरी से निकाल दिया गया। अब तो कठिनाई होने लगी। दिन प्रति दिन घर में लड़ाई-झगड़े होने लगे। परन्तु करते क्या ? हमारी कन्या की आयु में एक २ दिन की अधिकता प्रलय-अग्नि के समान हमें जलाने लगी। लोग बुरा भला सुनाने लगे क्योंकि हमारी कन्या ही हमारे मुहल्ले में सब से बड़ी थी। उसकी माता के पास जो भूषण थे वे तो प्रति दिन के व्यय में समाप्त हुये। अतः हम घोर विपत्ति में फंसे। निदान एक गरीब घर में कन्या का विवाह निश्चित हुआ। अब तो मंगनी का समय आया। मेरे पास उतना धन नहीं था जो उस मुहूर्त की बन्धनशृङ्खलाओं के लिए काफी हो सकता। इस बन्धन का तोड़ना मानों समाज के नियम तोड़ना था। लोग जोक़ दर जोक़ आने लगे कि देखते हैं यह क्या करता है। मैं विवश होकर मकान का एक भाग बेचने के लिए उद्यत हुआ। जो धन मिला वह सारा कन्या के ससुराल वालों को भेजना पड़ा।

कुछ मास बीत गये। अब विवाह की तैयारी बड़े समारोह से होने लगी। परन्तु मेरे पास धन नहीं था। मैं अब अपने मकान को बेचने के लिये विवश हुआ। बरात धूमधाम से आई। ईश्वर की कृपा से कोई विघ्न न हुआ। और विवाह-संस्कार के होने पर मेरी कन्या ससुराल चली गई।

मुझे आशा थी कि मैं अब सुख की नींद सो सकूंगा। परन्तु किसको मालूम था कि मेरे भाग्य में क्या बदा है। मेरी कन्या को ससुराल में बहुत दुःख मिला। उसको कहा गया कि तुम्हारे माता-पिता के पास काफी धन है और वे उसे तुम से छिपाते हैं। इसका परिणाम यह निकला कि आये दिन के झगड़ों से तङ्ग आकर मेरी कन्या ने अपने प्राण गंवाये।

इन्हीं सङ्कट के दिनों में इस बालक का जन्म हुआ। इसकी माता ने तो अपनी पुत्री के विवाह से व्याकुल होकर देहत्याग किया। हमारे सभी भाई-बन्धुओं ने मुख मोड़ लिया। हम निराश हुये और यही कारण है कि आज हम इस दुर्दशा को पहुँचे हैं॥।"

इतना कह कर वह व्यक्ति चुप हुआ। इतने में उस लड़के ने रोना आरम्भ किया। मैंने अपनी जेब से कुछ पैसे निकाल कर बच्चे के हाथ में दे

॥ पाठक गण तो अवश्य ही थक गये होंगे, किन्तु क्या किया जाय यह तो शुकदेव जी की कथा हो रही थी, अतः ज़रा लम्बी करनी पड़ी—सं०

दिये। वह चुप हुआ और खेलने लगा। वह आदमी अवाक् होकर नीचे की ओर देखने लगा। मैंने देखा कि उसके नेत्रों से आंसुओं की दो धारायें बहने लगीं। मैं मन ही मन सोच रहा था कि क्या हमारे विवाहों का यही परिणाम हो सकता है। मैंने उस मनुष्य का ढाढ़स बँधाया और उसने इसके बदले रुन्धी हुई आवाज़ में कहा—'बेटा, सुखी रहो।'

अब बहुत देर हुई थी। मैं सीधा घर की ओर लौट आया। मार्ग में एक कुत्ता भोंक रहा था। वे दो बच्चे अब भी रो रहे थे। घर पहुँच कर मैं बिना कुछ खाये पिये इस अद्भुत और दुःखप्रद वार्ता पर विचार करते करते सो गया।

———

साहित्य-मंजरी

पञ्चमी कलाः—

अंग्रेज़ी (English)

प्रभात

रात्रि प्रभात-पथ में शबनम का छिड़काव करती है—

कलिकाएँ चटक जाती हैं—

पत्तियाँ महक उठती हैं—

भगवान् भास्कर अपनी रश्मियों की स्वर्णमयी फुलवाड़ी को लुटाना आरम्भ कर देता है—

रातकी निस्तब्धता रूपी मृत्यु टूट जाती है—

दिन का कोलाहलमय रूप प्रकट होने लगता है—

वायु नाचती है,

पत्तियां बजती हैं और अलापने लगती हैं एक राग—मीठा सा—

मरुस्थल और संसार, वन और उपवन, सब के सब जाग पड़ते हैं—

वातावरण प्रकाशमय हो जाता है—

चिड़ियों की चहकार से आकाश का गुम्बद गूँज उठता है—

नन्हे नन्हे शिशुओं के मुख-मण्डल आदित्य की ओजमयी किरणों से आच्छादित होकर दमकने लगते हैं—

मन्द-गति पवन उनके सुन्दर २ कपोलों को चूम कर चला जाता है।

———

जर्मन (German)

तत्त्व

कौन कह सकता है कि परमात्मा इन छोटे से प्राणों को इस क़दर जल्द शिक्षा देगा। हमारी आँखें बहुत कम देखती हैं—स्वर्ग के मर्म को जान नहीं सकतीं—धरती के पेट में पैदा हुए अनेकों भेदों का पता नहीं लगा सकतीं। हमारा ज्ञान भी इसी सीमा तक है—हमारे कान भी वही सुन सकते हैं जो संसार के कृत्रिम कोलाहल में हो रहा है।

———

इतालवी (Italian)

जीवन का प्रभात और सायंकाल

मनुष्य के जीवन के प्रभात से क्या मुराद है?

मेरे विचार में तो जीवन का प्रातःकाल बाल्यावस्था को कहना चाहिये—

यह बाल्यकाल एक कोमल पेड़ के समान होता है।

ऐ युवक! मैं तुझ से कहता हूँ कि वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर तू युवक न होसकेगा।

ऐ सुन्दर-वदनी तरुणी! मैं तुझे बताता हूँ कि इस तरुणाई का गर्व चिरकाल तक न रह सकेगा। यदि तूने जीवन भर अब तक कुछ भी नहीं किया है तो परमात्मा तुझे सुकर्मों से अपने जीवन को सुयोग्य बनाने में अवश्य योग देगा, किन्तु यह न हो सकेगा कि तुझे नये सिरे से तरुणाई की मदिरा पीने का अवसर दिया जाए।

३० वर्ष की अवस्था के पश्चात् जीवन के शाम के साये गहरे होने आरम्भ होंगे।

फ्रांसीसी (French)

मृत्यु

"वह मर गई--"

आप समझते हैं कि मरने का अर्थ क्या है? अर्थात् वह अब दिखाई नहीं देगी--कभी नहीं—

उसकी आवाज़ अब कभी भी सुनाई न देगी।

उसके सुन्दर नेत्रों की आभा—उसके मुख की मुस्कुराहट नहीं दिखाई देगी।

वे सब बच्चों की भोलेपन की बातें, जो इतनी अच्छी लगती थीं, अब कभी सुनाई नहीं देंगी।

यह सत्य है कि मैं चित्रों द्वारा उसकी याद कुछ दिनों तक दिल में स्थापित रख सकता हूँ किन्तु इन सब में वह हृदय—और उस हृदय के वे भाव कहाँ?

संसार में लाखों स्त्रियां हैं और लाखों पैदा होंगी—किन्तु वह—वह काया अब संसार में वापिस नहीं आयेगी।"

ये सब भाव एक साधारण मनुष्य को पागल बना देने के लिये काफी नहीं हैं क्या? (क्रमशः)

'साहित्य-कोकिल'

———

मेरा स्वप्न

(लेखिका—कुमारी निर्मल कान्ता, द्वितीय वर्ष)

उस दिन सन्ध्या के समय मेरी कुछ सहपाठिनियां आई हुई थीं। कुछ इधर उधर की बातें करते हुए मैंने कहा—"क्या ही अद्भुत है संसार-वासियों की प्रकृति। जिस ओर दृष्टि दौड़ाओ पाप और कपट दृष्टि-गोचर होते हैं। निज स्वार्थ की पूर्ति के हेतु दूसरों को दुख देना भी वे लोग उत्तम समझते हैं!" मेरी एक सखी ने कहा—"हाँ, हो तो ऐसा ही रहा है, परन्तु जिस प्रकार हृदय को आनन्द मिले वही करना प्राणी-मात्र का कर्तव्य है।" अपनी सखी के इन शब्दों को सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। अपने को आनन्द देना, परन्तु दूसरों के भावों का विचार भी न करना क्या यही मनुष्य का कर्तव्य है? अपने को सुखी बनाने के लिये दूसरों को दुःख देना पशुओं का काम है। ऐसी अवस्था में तो मनुष्य के कर्म तो पशुओं के समान हैं, यह विचार कर मेरा हृदय अति व्याकुल हो गया।

× × × ×

रात्रि को सोते समय भी यही विचार मुझे विकल करने लगे। क्या संसार-वासियों की यही दशा रहेगी? क्या उनमें मनुष्यत्व का आभास न होगा? मालूम नहीं कब इस प्रकार सोचते २ मुझे निद्रा आ गई।

× × × ×

मैं एक खुले मैदान में थी। मैं कुछ न कह सकी कि मुझे यहाँ कौन ले आया है।

बहुत समय तक मैं वहाँ की प्राकृतिक शोभा के निहारने में निमग्न रही। हर एक वस्तु रूप और शोभा का भंडार प्रतीत होती थी। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मैं किसी और लोक में हूँ। हमारे लोक में तो इतना सुन्दर स्थान न था। पास ही एक नदी कलनाद करती हुई जा रही थी। मन्द, शीतल और सुगन्धित समीर बह रही थी। प्रकृति अतीव शोभायमान थी। मैं नदी के तट पर चली गई और एक पत्थर पर बैठ कर यों सोचने लगी—"इस सुन्दर स्थान में रहने वाले बड़े सौभाग्यवान हैं।

नदी के तट पर बड़ी २ चट्टानें थीं। मैं एक चट्टान पर चढ़ने का प्रयत्न करने लगी। इतने में मुझे दूर से कोकिल-कण्ठियों के बातें करने की ध्वनि आने लगी। कुछ स्त्रियें निकट के वृक्षों के झुण्ड में से आ रही थीं। उनके मनोहर रूप पर मैं मुग्ध हो गई। वे रूपवती स्त्रियाँ उसी स्थान पर रहने के योग्य थीं। वे पास की चट्टानों से होती हुई नदी-तट पर पहुँचीं। सब ने अपने २ सिरों से कलसियों को उतारा और उन्हें जल से भरने लगीं।

उनमें से सबसे छोटी कुमारी ने मुझे देख लिया। वह मेरे निकट आ गई। उसने मेरे पास आकर मुझ से पूछा—"तुम कौन हो"? मैं कुछ

उत्तर न दे सकी और मुख की ओर निहारने लगी। उसने फिर कहा—"तुम कुछ विस्मित सी प्रतीत होती हो। क्या तुम किसी और स्थान की रहने वाली हो ?" मैंने उत्तर दिया—"हाँ, मैं मनुष्य-लोक में रहती हूँ!" उसने सरलता से फिर कहा—"क्या मनुष्य-लोक यहाँ से अधिक अच्छा है ? वहाँ के लोग कैसे हैं ?' मैंने अपने हृदय की सारी व्यथा उसके सामने प्रकट करदी। मेरे दुःख से दुःखित होकर उसने कहा—"क्या तुम हमारे पास रहोगी ?" मैं ने सिर हिला कर स्वीकृति प्रकट करते हुए कहा—"यदि आपकी ऐसी कृपा हो तो मैं अनुगृहीत हूँगी !" वह मुझे अपनी संगिनियों के पास ले गई और सबसे बड़ी युवती से कहने लगी—" दीदी, यह मेरी नई सखी है।"

वे सब जल की कलसियें लेकर एक ओर को चल पड़ीं। वह मेरी सखी मधुर वाणी से मुझसे वर्तालाप करती थी। क्या ही उत्तम थीं वे स्त्रियें। उनमें कपट का नाम-मात्र भी न था।

× × ×

उनके लोक में बड़े सुन्दर गृह थे। वहाँ की सारी रचना अनुपम थी।

कुछ ही दिनों में मैं उनके संग हिलमिल गई। वहाँ सब प्राणी प्रेमपूर्वक रहते थे। वे छल-कपट और पाप से अनभिज्ञ थे। वे बड़े पुण्यात्मा और धर्मात्मा थे। वे किसी को भी कष्ट न देते थे और सब सुख से रहते थे। एक दूसरे को सुखी बनाना ही उनका उद्देश्य होता था। वे सब नम्र, शीलवान और गुणवान थे। उनके संग रहने से मुझे अलौकिक सुख प्राप्त हुआ और मेरे मन की अशान्ति दूर हो गई।

"आठ बज गये हैं, क्या आज उठना नहीं है ?" ऐसा किसी ने कहा और तत्क्षण ही मेरी निद्रा भंग हो गई। ओह, उस ने मुझे इस सुख-स्वप्न से जगा दिया। यही तो वह छली संसार है, जिसमें मैं पहले थी।

जिस प्रकार हमारे शरीर को भोजन और व्यायाम की आवश्यकता है, ठीक उसी प्रकार हमारे मस्तिष्क को भी है। अध्ययन हमारे मस्तिष्क का भोजन है और मनन या विचार उसका व्यायाम।

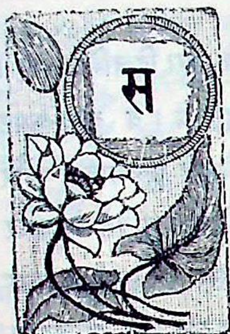
(श्रीरामचन्द्र वर्मा)

जिसका मन उचित काम करने से तिलमात्र चलायमान होता ही नहीं और जो अनुचर कार्य्य देख कर विना उसे शुद्ध किये नहीं रह सकता, वही सच्चा वीर है। दृढ़ता वीरत्व की सब से बड़ी पोषिका है।

(मिश्र बन्धु)

सन्तोष

(लेखक—हृदय नाथ वारिकू)



सन्तोष उन महागुणों में से एक है जो भगवत्-प्राप्ति के मार्ग में सहायता देते हैं। इससे इहलोक तथा परलोक दोनों सुधर सकते हैं और मनुष्य सुखी बन सकता है।

वही मनुष्य संतोषी हो सकता है जिसमें लोभ न हो, अर्थात् संतोष का दूसरा नाम लोभ का अभाव है। लोभी मनुष्य सन्तोष के गुण को ग्रहण नहीं कर सकता है। लोभ से मनुष्य कितने ही बुरे कर्म करके अन्त में कई प्रकार के दुःख भोगता है। धन का लोभी चोरी, कपट आदि और मान का लोभी घृणा, ईर्ष्या आदि अवगुणों को अपनाते हैं। जिस तरह सिंह का मन सदा चंचल रहता है उसी प्रकार लोभी आदमी का मन कभी चैन से नहीं रहता। वह इसी विचार में डूबा रहता है कि किस तरह मेरे धन इत्यादि सुख की सामग्रियों में उत्तरोत्तर अधिकता हो। दिन को भी वह यही सोचता रहता है और रात को भी इसी सम्बन्ध के स्वप्न देखता रहता है। इसके विरुद्ध सन्तोषी लोगों का मन हर समय शान्ति और सुख का अनुभव करता है।

लोभी आदमी को कभी तृप्ति नहीं होती है। एक इच्छा की पूर्त्ति होने पर दूसरी इच्छा उसके मन में उत्पन्न होती है। परन्तु सन्तोषी को ऐसी चिन्ता कभी नहीं होती। अलक्षेन्द्र (Alexander) ने पृथिवी के एक बहुत बड़े भाग को जीत लिया था पर तो भी मरते समय उसने यही कहा था कि मेरी जिगीषा की प्यास नहीं बुझ सकी। जिस मनुष्य की इच्छाएँ जितनी कम होती हैं उसे उतनी ही कम चिन्ताएँ होती हैं। साधुजन इसी लिए नित्य प्रसन्न रहते हैं कि उन्हें इच्छा-पूर्त्ति की धुन सवार नहीं होती है। मनुष्य को अपने जीवन-निर्वाह के लिए जितनी कम साँसारिक सामग्रियों की आवश्यकता हो उतना ही वह प्रसन्न और सुखी रह सकता है क्योंकि उसको थोड़ी ही वस्तुओं की देख-भाल करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। त्यागी पुरुष सन्तोषी होने के कारण सर्वदा प्रसन्न रहता है।

एक पुरुष और उसकी स्त्री पहले बहुत धनिक थे। सभी प्रकार की सुख की सामग्रियां उन्हें उपलब्ध थीं। कुछ समय के पश्चात् दुर्भाग्य-वश उनका कुछ धन तो अग्नि के अर्पण हुआ और कुछ चोर ले गए। इस प्रकार वे बहुत निर्धन हो गए। उनको पहनने को चिथड़ा और खाने को टुकड़ा न रहा। तब उन्होंने एक अमीर पड़ोसी के यहाँ नौकरी करली। ऐसी दशा में किसी ने उनसे पूछा कि क्या तुम अब सुखी हो या जब तुम धनिक थे। इस बात का उत्तर उसकी पत्नी ने

इस तरह दिया—"जब हम अमीर थे तो हमें बहुत सी चिन्ताएँ होती थीं। कभी मामूली बात पर हम आपस में लड़ते थे, कभी चोरों का भय रहता था और कभी अच्छी अच्छी चीज़ें खरीदने की चिन्ता रहती थी। इस तरह हमारा मन कभी प्रसन्न न रहता था। परन्तु अब जब कि हम अपने पड़ोसी की सेवा करते हैं, हम पहले से बहुत सुखी हैं। हमें अब कोई चिन्ता नहीं। हम बड़े आनन्द से रहते हैं और प्रातःकाल ईश्वर-भजन करते हैं।" मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि मनुष्य निर्धन हो किन्तु यह कि अधिक धन की इच्छा रखना ही दुःख का कारण हो जाता है। धन की अधिकता के कारण ही कोई मनुष्य एक गुण-सम्पन्न और पतिव्रता पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह करने पर उतारू होजाता है और उस साध्वी स्त्री के जीवन-उद्यान को शून्य बना देता है। धनी और जीवों को दुःख देने और उन के साथ अन्याय करने में अपना मनोविनोद समझते हैं। उनको दूसरों के दुःखों पर दया नहीं आती।

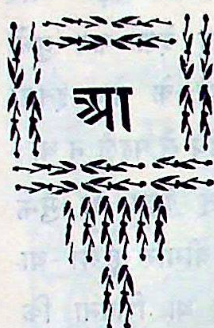
'संसार में जो कुछ होता है, अच्छा ही होता है' इस बात में सन्तोषी आदमी को पूर्ण विश्वास होता है। वह समझता है कि परमात्मा ने मुझे जो कुछ दिया है उसी से मैं सुखी हो सकता हूँ। परमात्मा जो कुछ करता है वह हमारे कल्याण के लिये ही होता है। ऐसा कार्य चाहे प्रारम्भ में कितना ही दुखदायक क्यों न प्रतीत हो पर वह अन्त में हमारी भलाई का ही कारण होता है। गतवर्ष मेरा एक मित्र बहुत बीमार पड़ा और उसका आपरेशन भी हुआ। यह देख कर मुझे आश्चर्य हुआ कि वह बीमारी के बाद इतना स्वस्थ हुआ जितना कि वह व्याधि से पहले न था। जब मैंने उसे बीमारी के पश्चात् देखा तो मुझे विश्वास ही नहीं आया कि वह बीमार हुआ था क्योंकि अब वह इतना निर्बल न था जितना कि इतनी बीमारी के बाद हो सकता था। इससे विदित होता है कि जो वस्तु पहले बुरी मालूम होती है, वही कालान्तर में अच्छा फल देती है। दुःखों को व्याकुल न होकर झेलने से ही सच्चे सुख का अनुभव हो सकता है।

प्रकृति के नियम अटल हुआ करते हैं। भगवान् ने जीवों के हित के लिये पूर्व ही से ऐसे नियम और ऐसी सुविधाएँ बना रक्खी हैं जिनसे वे अपना जीवन सफल और श्रेयस्कर बना सकते हैं। इन्हीं लाभप्रद सुविधाओं और प्राकृतिक नियमों में से 'संतोष' एक है। यही एक नियम मनुष्य को उच्च और उत्कृष्ट चरित्र, शील और शान्ति आदि सद्गुणों से भूषित करता है। ऐसे ही गुणों से अलंकृत मनुष्य का जीवन सफल और सार्थक होता है, नहीं तो वैसे जीने को पशु आदि निकृष्ट जीव भी खा पी कर जीते हैं।

————

कहानी कैसे लिखनी चाहिए।

(लेखक—वीर विश्वेश्वर)



आज कल के नवयुवकों के लिये कहानी लिखना एक प्रथा सी हो गई है। प्रत्येक ऐसा मनुष्य, जो कहानियों की दो तीन पुस्तकें पढ़ता है, यही समझने लग जाता है कि मैं भी कहानी लिख सकता हूँ। हमारे कॉलेज मेगज़ीन के लिये भी दरजनों कहानियाँ आती हैं परन्तु कई कहानियाँ ऐसी होती हैं कि उन्हें कहानी के नाम से पुकारना इस कला को अपमानित कर देना है। इसी कारण बहुधा हमारे कई लेखक महोदय हम से असंतुष्ट रहते हैं कि हम उनकी कहानी वा आख्यायिका को कॉलेज की पत्रिका में प्रकाशित क्यों न कर सके। अस्तु, यह तो बात में बात चली, नहीं तो यह एक यथार्थ बात है कि कहानी लिखना ऐसा आसान काम नहीं है जैसा कि हमारे सुलेखकों ने समझ रक्खा है।

आख्यायिका लिखने के लिये सर्वप्रथम और आवश्यक बात यह है कि आख्यायिका-लेखक को उस भाषा पर पूरा अधिकार हो जिसमें कि वह कहानी लिख रहा है। भाषा पर पूरा अधिकार होने के अतिरिक्त उसका अध्ययन-क्षेत्र भी विस्तृत हो। केवल बड़े २ कठिन शब्दों का ज्ञान होना या उनका प्रयोग करना ही लेखक को एक सिद्ध-हस्त गल्प-लेखक नहीं बना सकता। इसके पश्चात् कहानी लिखने के लिये एक ऐसे हृदय और मस्तिष्क की आवश्यकता है जो साधारण बातों पर एक आकर्षणीय वातावरण खड़ा कर सके। उदाहरण के तौर पर आप प्रतिदिन देखते हैं कि सड़कों पर भिखारी भीख मांगते फिरते हैं, परन्तु बहुत कम लोग ऐसे हैं जो यही दृश्य देख कर प्रभावित हों और एक करुणा-जनक गल्प लिख डालें। अर्थात् गल्प-लेखक के लिये एक ऐसी आंख का होना आवश्यक है जो आँख साधारण से साधारण घटनाओं की तह तक जाकर दम ले। आजकल के बहुत से गल्प-लेखक विशेषकर हमारे कॉलेज के विद्यार्थी इससे आगे एक पग भी बढ़ते नहीं—

"मैंने कहा—"प्यारी ओषा !"

उसने आगे बढ़कर कहा—"मुझे तुम से बहुत प्रेम है।"

तो यह है कि कुछ अनुग्रहकर्त्ता तो ऐसे हैं जो कहानी का इस प्रकार आरम्भ कर देते हैं—

"संध्या का समय था। मन्द २ पवन चल रही थी" या कुछ इस प्रकार लिख देते हैं—

"फाल्गुन का मास प्रकृति को उतना ही प्रिय है जितना कि माता को अपना नवजात शिशु होता है। वह अपने इस नन्हे बच्चे को भाँति २ के सुन्दर और रमणीय पदार्थों से आभूषित

करती है ताकि दर्शक देखते ही इसकी प्रशंसा के पुल बांध दें। जहाँ वृक्ष को कोमल और पीले २ पत्तों से सुसज्जित करती है वहाँ उपवनों तथा वाटिकाओं से सब्ज़ कालीन बिछाती है!" फिर एक और अनुच्छेद (Paragraph) यूं आरम्भ करते हैं—

"सायंकाल का समय था। भगवान् सूर्य दिन भर के थके मान्दे होकर अस्ताचल को जा रहे थे..." गोया ये लोग कहानी नहीं किन्तु एक उपन्यास लिखने का निश्चय रखते हैं या इन्हें अल्फ़-लैला (Arabian nights) की परियों अथवा गुलि-बकावली की कहानी सुनानी है जिसमें उस परी के उद्यान का चित्र खींचना है। एक संक्षिप्त सी बात के लिये इतना लम्बा चोड़ा वर्णन अच्छा नहीं लगता।

तीसरी बात यह है कि कहानी की आत्मा वार्तालाप (Dialogue) है। वार्तालाप की सुन्दरता पर ही सारी गल्प का जीवन बना रहता है। यदि वार्तालाप में निर्जीवता सी पाई जाए तो उस गल्प के भगवान् ही रक्षक हैं। और सच भी तो यह है कि अगर किसी बड़े से बड़े गल्प-लेखक की गल्प में वार्तालाप फुसफुसा और कमज़ोर हो तो वह गल्प-साहित्य अथवा कला की कसौटी पर पूरा न उतर सकेगी अर्थात् वार्तालाप स्वयमेव एक ऐसी शक्ति है जो गल्प की शेष सारी कुरूपता को न केवल छुपाती है वरन् उन बुराइयों पर काले परदे की भांति छा जाती है। गल्प लिखते समय इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाना चाहिये कि वार्तालाप प्रभाव-जनक और संक्षिप्त हो। कॉलेज के कई कहानी-लेखक इस बात की ओर ध्यान नहीं देते वरन् उनकी कहानियों में इस प्रकार के वार्तालाप भी न होते।

'सहसा ही माता को कह उठा—'माता', मैं बेबस हूँ। यद्यपि मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि यह मेरा कर्तव्य नहीं है तथापि न मालूम मुझे कौन सी शक्ति इस की ओर प्रेरणा करती है, कौन सी व्याधि मेरे शरीर में यह पीड़ा उत्पन्न करती है। मुझ में अपनी कुछ सुध-बुध नहीं रहती है। मुझे यह करने से नहीं रोको। नहीं तो संसार में जीवित रहना मेरे लिये कठिन और दुःखदायक होगा......"

अब देखिये! इन लोगों ने कठिन शब्दों और लम्बी चौड़ी इबारत को ही कहानी की जान समझ रक्खा है। यदि वार्तालाप ही इस क़दर लम्बे रंग में लिखा गया तो गल्प पढ़ने में भी काफी समय लगेगा। इसके पश्चात् व्याकरण से जैसे इन्हें बिल्ली चूहे का वैर है। एक पंक्ति में कम से कम एक ग़लती तो दिखा ही देंगे। क्या ही अच्छा होता अगर इसी लम्बी बात को इन शब्दों में कहा जाता—'उस ने माता के पास आकर कहा—"मैं बेबस हूँ, मां! यह मेरे जीवन और मृत्यु का प्रश्न है।"

एक और विद्यार्थी अपनी गल्प में लिखते हैं—

सतीश—तुम्हारी बुद्धि और लेखनी की कितनी प्रशंसा करूँ। अभी मैं तुम्हारा लेख 'फूल'

में पढ़ रहा था और सोचता रहा था कि तुम अपने लेख को सरस कैसे बना लेते हो ?

और दूसरी बात यह है कि गल्प का वार्त्तालाप एक उपन्यास या नाटक के वार्त्तालाप की शैली से भिन्न हुआ करता है अर्थात् यदि हम उपन्यास वा नाटक में यूँ लिख दें—

कुमार—"नरेन्द्र ! अधिक न फांको………। जानता हूँ कि इस शुद्ध और निःस्वार्थ प्रेम के पर्दे के पीछे क्या कुछ है।"

नरेन्द्र—"बस, कुमार ! इसके आगे न बढ़ो। नहीं तो ठीक न होगा।"

किन्तु गल्प में ऐसा नहीं किया जा सकता। गल्प में जहां तक घटना का सम्बन्ध है उसे एक या दो अपने शब्दों में दोहराया जा सकता है जैसे ऊपर-लिखित पंक्तियों में हम 'नरेन्द्र……।' के स्थान में यूँ लिख सकते हैं—'नरेन्द्र ने गुस्से से कहा……।' अस्तु, आज कल गल्प इस उद्देश्य से नहीं लिखी जाती कि उसे देख कर पाठक अपने समय का एक काफी भाग यूँ व्यतीत करे, बलिक इस लिए कि कहानी एक आध घण्टे के लिये मनोरंजन की सामग्री बन जाये। पश्चिमी देशों में आजकल गल्पों की आकृति ही बदल गई है। वहां इस प्रकार की गल्पें लिखी जाती हैं जो पन्द्रह बीस मिन्टों तक पाठक को अपने में डुबो लें।

चौथी बात गल्प के पात्र हुआ करते हैं। इन की तरतीब के लिये भी प्रवीणता और पटुता की आवश्यकता हुआ करती है। गल्प के पात्रों में भेद होता है। पहली कक्षा में नायक और नायिका दिखाई देते हैं। कभी ऐसा हो जाता है कि गल्प में केवल एक ही पात्र को इस पटुता से पेश किया जाता है कि गल्प बार २ पढ़ने को जी चाहता है। कभी गल्प में दो तीन पात्र भी आते हैं परन्तु पात्र जिस क़दर कम होंगे उसी क़दर गल्प भी कला की कसौटी पर पूरी उतर सकती है। एक गल्प में नायक, उसके माता-पिता, मित्र, और उसकी प्रियतमा, पुजारी, प्रियतमा की माँ, नौकर और आश्रम के प्रबन्धक वे सभी पात्र आने आवश्यक नहीं किन्तु अगर गल्प एक नायक के गिर्द ही घूमती रहे तो उचित होगा। गल्प में पात्रों को इस सलीके से पेश किया जाना आवश्यक है कि पाठक अपने आपको वही पात्र समझने लगे जिसका उल्लेख हो रहा हो या अगर किसी और पात्र को एक 'दुष्ट' के रूप में दिखाया जाये तो पढ़ने वाले दांत निकाल २ कर उसे दिल में कोसने लगें। किसी ठुकराए हुए पात्र का चित्र पेश किया जाए तो पढ़ने वाले बार बार अपने आँसुओं को पीने का यत्न करें। कई लोग किसी पात्र का उल्लेख करते हुए लिख बैठते थे—

"रमेश एक अमीर का बेटा था।"

और उसके बाद कुछ पंक्तियां लिख कर फिर फरमाते हैं—

"रमेश ने अपने फटे पुराने कपड़े पहने—" हालांकि इस बीच में एक भी ऐसी घटना नहीं हुई जो रमेश के पिता को या रमेश को ग़रीब बना देती। ऊपर लिखी बात का नीचे स्वयं विरोध

करना गल्प का सब से भारी दोष है जब तक उसके किसी परिवर्तन के कारण वा घटना को प्रकट न किया जाए।

कहानी लिखने के विषय में और भी कई बातों का उल्लेख बाक़ी है जो यदि ईश्वर ने चाहा तो दूसरे अँक में आपकी सेवा में निवेदन की जाएँगी। आशा है कि यह संक्षिप्त लेख-क्रम लाभदायक ही होगा।

———

प्रेम-चिन्ह

[मेरी डॉबसन के 'ताजमहल' का स्वतन्त्र अनुवाद]

(१)

शाहजहान ने भग्न-हृदय हो अपनी प्रियतमा का उल्लेख करते हुए कहा—

"चूँकि भगवान् की यही इच्छा थी कि हम जुदा हों—एक दूसरे से—और कहीं ऐसा न हो जाए कि संसार उसे भूल ही जाए—

मेरी उस प्रियतमा को, जो मुझे अत्यन्त प्रिय थी—अतः मैं उसे एक अनुपम मक़बरे में रक्खूंगा—ताकि वह सदा याद की जाए—अखिल संसार में।

(२)

इसके पश्चात् सम्राट् ने बड़े योग्य शिल्पकारों का अन्वेषण किया—जो कि इसकी स्वर्गवासिनी प्रियतमा के लिये एक अनुपम मक़बरा खड़ा कर सकते। अपने काम में अत्यन्त पटु उन कलाकारों ने बड़े परिश्रम से एक अद्वितीय, बहुत सुन्दर और उज्ज्वल मक़बरा बनाया। उसे देख कर सम्राट् के नेत्रों की दर्शन-पिपासा कुछ शांत होने लगी।

(३)

पर आख़िर वह एक जड़ पदार्थ और स्मारक-चिह्न ही तो था। उद्विग्न हो कर सम्राट् उसे ताकता रहा। उसका शोक बढ़ता ही चला जाता था—कुछ कम न होता था।

उसे सांत्वना का कोई साधन प्रतीत न हुआ। वह इसी शोक में बूढ़ा हो गया।

उसकी आंखें भी रोते रोते जवाब दे बैठीं—और निदान—

सदा के लिये इस नश्वर संसार को छोड़ चला। उन्हों ने उसे सदा के लिये नींद में मद-मस्त जैसे उसी अपनी प्रियतमा के सङ्ग सुला दिया।

(४)

किन्तु—

ताजमहल अभी भी आगरा नगर में अपनी गुरुता-पूर्ण और गरिमा-शाली—श्वेत और जग-मगाती हुई—किरणों के सङ्ग सुन्दरता और, मधुर रूप, में उस युगल-मूर्ति के प्रेम के तरानों

को गा रहा है। वहीं—

वे दोनों एक दूसरे से हार्दिक प्रेम निभाते हैं—एक ही संगमरमर के मक़बरे के नीचे-पहलू ब पहलू—अपनी अक्षय निद्रा में सो रहे हैं।

उन लाशों को, जोकि जीवन में कब की जुदा हो चुकी थीं—मृत्यु कब जोड़ सकती है?

(५)

कई परिस्थितियों में पड़जाने से विघ्नों के आने पर भी वास्तिविक प्रेम का सच्चा स्वरूप अक्षय ही रहता है।

पानी के श्रोतों से इस प्रेम की प्यास बुझ नहीं सकती और न ही मृत्यु की भीषण लहरों से।

उस सच्चे और वास्तविक प्रणय का पतन कभी भी नहीं हो सकता—

चाहे मनुष्य कितना ही नृशंस क्यों न हो—किन्तु, ऐसा होते हुए भी ये सारी वस्तुएँ—और यह जीवन—भूतकाल की कहानियों में दफ़न होते चले जाते हैं।

अनुवादक

जानकी नाथ पंडित एफ० ए० स्टूडेंट

———

टेलिफोन पर

हैलो, हैलो !...कहिये, कहिये...हाँ, हाँ, मैं ही तो हूँ—'एडीटर'—लेकिन—आप हैं कौन ? हैं ! डिस्यक्स्यु ? अप्रकाशित लेखों को ढूँढ़ने वाले... वाह ! ......अच्छा ! वे आप के पास शिकायत ले के आये थे क्या ?......हाँ, वे यहीं तो हैं—रद्दी की टोकरी में।......क्या कहते हैं आप ? अच्छा कहूँ ? तो सुनिये, लेकिन ज़रा गिनते जाइये...........।

नं० १—('तुम कहाँ हो')। देखिये—आप मुझे अपराधी न ठहरायें। भला बतलाइये तो मैं इस चोरी के माल को कहाँ २ लेता फिरूं...... क्या ? विश्वास नहीं आता है ? तो देखिये 'रहनुमाये तालीम' के १९२७ के फरवरी के अंक का पृष्ठ ५४', ज़रा देख लीजिये न......आप को मेरी सौगन्ध है।

और लीजिये दूसरा—'अधिक दुःखी कौन ?' यह भी इन्हीं का है। लेखिका की कल्पना की उड़ान आकाश के उच्चतम हिस्से पर पहुंची है, पाठकों की बुद्धि वहां पहुँच नहीं सकती।...... ओह ! नहीं डिस्यक्स्यु साहब ! उन से कह दीजियेगा कि आवश्यकता तो है इस बात की कि मनुष्य-जीवन की व्याख्या करते हुये अपने स्वतन्त्र विचारों से काम लिया जाये—क्यों ठीक है न ?.........वाह रे डिस्यक्स्यु ! कमाल कर दिखाया ! आख़िर इन खोये हुए लेखों को ढूंढ़ ही लिया आपने, क्यों ?......तो लीजिये—

तीसरा—'परिश्रम का महत्व', हाँ-हाँ...... ज़रा देख लीजिये न अपने नोट बुक पर......... हाँ, 'ज०' का,......तो कह दीजिये न उन से कि आपने इतना तङ्ग लिखा था कि बूढ़े पंसारी ने भी इसे स्वीकार न किया......हैं ? क्या कहा कि उसने क्या कहा ! हाँ......उसने, जी, कहा कि इस में मेरी शक्कर, तम्बाकू, खशखाश आदि कहां समा सकते हैं...अब देखते हैं, ज़रा खुला २ लिख कर इस से अगले अंक में दिया जायगा। बस ठीक है न.........!

हैं, क्या कहा ?......'मिस्टर' 'प.' का मैं और तुम'—लीजिये फ़ारसी की कविता तो उन्हीं के दम से जीवित है—

...सुनिये......फरमाते हैं—

'मन तू शुदम तू मन शुदी,
मन तन शुदम तू जां शुदी ॥'

लेकिन......उफ, वे भूल गये हैं कि......

'तरकस न गोयद बादे अज़ीं।
मन दीगरम, तू दीगरी ॥'

हां......बुरा तो नहीं......लेकिन काल्पनिक उड़ान बहुत ऊँची है......हां, तो इसीलिये मौलिकता का अभाव हुआ है।......ठीक है......

ओह ! 'भू.' साहब का 'कवित्त मन हरण', हां, तो......ठीक है......लेकिन अगर बुरा न मानें तो तीस मारखां ही मालूम होते हैं......हां,

……सुनते जाइये……

संकर किलास में, सक्र ज्यों बिलास में,

दुग्ध ज्यों गिलास में, मधुर विद्यमान है।

गंग जिमि वारण में, सैल कगारण मैं……

ओह ! यहां ज़रा उनसे कह दीजियेगा कि पहले छोटे २ छन्दों में कविता करने का अभ्यास ठीक हो सकता है और……गद्य लेखों से यदिसाहित्य-सेवा का प्रारम्भ हो तो और भी अच्छा है—सुना आपने……ओह थक गये क्या ?……तो किस ने कहा था कि इस बखेड़े का ज़िमा लो……हैं…! ज़रा ऊँचे बोलिये न…क्या कहा ? 'मिस्टर' 'ज' …का 'कृष्ण'……हैं ! वे तो राधा के हैं, इनके कब से हुए ?……ठीक तो है……कृष्ण जी को राधा से छीनने में समर्थ न होकर अब 'भ्रमण' का उपदेश करते फिरते हैं……उफ ! उनसे तो कह दीजिये न पहले कि ऐसे भ्रमण से क्या लाभ, पहले साहित्य-क्षेत्र में चलने का अभ्यास करें……… ओह भगवान्……बस भी करो अब, डिस्पक्टयु मेरे तो इस घूँ घूँ से कान पक गये……देखिये, मेरे पास इतना समय है नहीं……सच……अपने राम की क़सम……हैं ! क्या कहा ? केवल एक… अच्छा तो जल्दी कीजिये……नहीं तो रसीवर बस गिरने को ही है…………………………

ओह………वह 'प्रतीक्षा'………'मिस्टर 'प' का……लेकिन मैं तो उन से मिलना नहीं…… चाहता……क्योंकि वे तो 'उठा' को 'ऊटा', 'अभी' को 'अबी', 'मिनट' को 'मिण्ट' और 'सकी' को 'सकि' लिखते हैं तो आप स्वयं सोच लीजिये कि अगर वे 'सम्पादक' को कभी 'वीर' के बदले 'वीरां' बना दें तो आप क्या समझें, वे क्षमा कर देंगे क्या ?………हूँ,……देखिये ! देखिये ! आप भागे क्यों जाते हैं, उन से कह दीजियेगा कि हिन्दी में हिन्दी की कविता लिखते हैं, अंग्रेजी की नहीं………ओह………आये थे मूंछों पर ताव दे कर……अब देखा। छिः छिः !

'ए० डी० टर'

———

विभ्रम

लेखक—जगन्नाथ कौल (डुलू) प्रथम वर्ष

सायंकाल था। मन्द मन्द पवन पुष्प-लताओं को हिला कर और खिले हुए फूलों की सुगन्धि छिटक कर विश्रान्त लोगों के श्रम को शान्त कर रहा था। प्रेम अपने मित्र श्याम के साथ चारों ओर फूलों तथा वृक्षों से शोभायमान बाग़ में टहल रहा था। दोनों एक स्कूल की एक ही श्रेणी के विद्यार्थी थे। आपस में बात चीत होने लगी। प्रेम ने श्याम को कोई रोचक कहानी सुनाने के लिए बहुत अनुरोध किया। तब श्याम ने प्रेम को बड़े प्रेम से बाग़ में बिठा कर एक बड़ी सुन्दर कहानी सुनानी आरम्भ की—

एक नगर के कॉलेज में एक लड़का पढ़ता था। उसका नाम था भास्कर। वह रूप में मनोभव के समान था। विद्या और धन आदि के मद की अपेक्षा उसमें रूप-मद बहुत अधिक था। उसका केवल अरुण नाम का एक मित्र था। एक दिन कॉलेज जाते समय उन दोनों ने रास्ते में एक उन्मत्त मनुष्य को "कृष्णा" के विषय में कुछ कहते सुना। उस उन्मत्त आदमी को 'कृष्णा, कृष्णा' बार बार कहते सुनकर भास्कर के हृदय-सरोवर में कृष्णा का प्रेम रूपी कमल स्थान कर गया।

भास्कर एक धनी पिता का इकलौता बेटा था। उसने अपनी अवस्था के बीसवें वर्ष में पदार्पण किया था। ऐसे रूपवान, धनवान और नवयुवक लड़के का नाम सुनकर भिन्न भिन्न स्थानों से विवाह के प्रस्ताव आने लगे,

एक दूत ने आकर कहा—महाराज ! एक जागीरदार की लड़की बड़ी सुन्दर है। वह कन्या इन्द्रनील रत्न की चेतन पुतली सी है। उसका रंग श्याम है, इस कारण दैत्यों से अमृत को लेने के लिए अपनी माया से मोहिनी रूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु का मानो अनुकरण करती है।

यह सुनकर भास्कर को बहुत क्रोध आया और वह टेनिस खेलने के बहाने घर से निकल पड़ा।

दूसरे दिन एक और दूत आकर भास्कर से बोला—महाराज, एक तहसीलदार की १६ वर्ष की इकलौती पुत्री बड़ी गुणवती, धनवती, रूपवती और विदुषी है। उसके नेत्र-कमल शरद् के समान खिले हुए हैं, वर्षा ऋतु की भान्ति उसके केश घने हैं, मूर्च्छा के समान वह मन को हर लेती है, निद्रा की तरह वह मन को आकर्षित करती है और मनसिज के पुष्प-धनुष की डोरी की भान्ति उस की कमर मुट्ठी में आने के योग्य है।

भास्कर ने यह सुनते ही अपने कपड़े लगाए और साइकल पर सवार होकर व्याकुल हुआ सा कहीं बाहर चला गया।

इधर भास्कर के पिता चिन्ताकुल हुए और कहने लगे—यह क्या बात है ? ज़रा इसके मित्र को तो बुलाएं। सम्भव है कि उसको इसके हृदय की बात मालूम होगी।

भास्कर के पिता ने पूछा—अरुण ! तुम हमारे पुत्र के मित्र हो, बताओ, उसको विवाह से क्यों इतनी घृणा होगई है ?

अरुण ने जवाब में कहा—पिता जी! एक दिन हम दोनों कॉलेज जारहे थे। मार्ग में एक उन्मत्त आदमी किसी कृष्णा के विषय में कुछ कह रहा था। भास्कर उसकी कृष्णा विषयक ये बातें सुन कर कहने लगा कि यदि मेरा विवाह किया जाय तो केवल कृष्णा से ही हो।

भास्कर के पिता के कहने पर उस उन्मत्त को बुलाया गया और उससे यों पूछा गया—तुमने कृष्णा को कहाँ देखा है ?

उन्मत्त—महाराज ! इस नगर में मुझे हर जगह कृष्णा ही कृष्णा दीखती है। वह दिन के समाप्त होने पर प्रकट होती है और सब लोगों पर अपना प्रभाव डाल कर उन्हें आनन्द से विश्राम कराती है।

भास्कर का पिता—आखिर उसका घर कहां है और वह रहती कहां है ?

उन्मत्त—महाराज! हर जगह उसका घर है। यदि एकान्त में उससे मिलने का आनन्द लेना हो तो वन में जाना चाहिए।

भास्कर का पिता—यह सब पागलपन की बातें हैं, कुछ समझ में नहीं आता। निकालो इसे यहां से।

पर भास्कार के हृदय में उस बावले मनुष्य की बात स्थान कर गई थी। वह सदा उदास रहता था। कृष्णा का विचार करते २ ही वह सारा दिन बिताता था। इसी प्रकार उसी के ध्यान में लीन होकर रातें भी करवटें बदलते २ ही गुज़र जाती थीं। निदान उसकी माता ने एक बार उस के पास आकर कहा—

हे पुत्र ! मैं तुम्हारे लिए एक बड़ी रुपवती कन्या ला दूंगी ! तुमको पता नहीं कि तुम किस उच्च घराने में उत्पन्न हुए हो। यह तुम्हारा कर्तव्य नहीं है। मालूम नहीं कि वह कृष्णा कौन है, किस योनि में उत्पन्न हुई है, कैसे निर्वाह करती है, कहां पर निवास करती है और उसका शील कैसा है, क्योंकि नीतिज्ञों ने कहा है कि जिसका कुल और शील मालूम नहीं हो उस को कभी भी आश्रय नहीं देना चाहिए—और जिनका धन और कुल बराबर हो उनका ही परस्पर विवाह आदि का सम्बन्ध हो सकता है, विषम लोगों का नहीं। अतः हे पुत्र ! तुम कृष्णा का विचार हृदय से दूर करो और अपने कुल की मर्यादा के अनुसार व्यवहार करते हुए अपने मान की रक्षा करो।

पर बेचारा भास्कर क्या कर सकता था। उसको कृष्णा के बिना किसी भी दूसरी कन्या के विषय में ध्यान देने के लिये हृदय में स्थान बाक़ी न था। वह एकबारगी माता को कह उठा—माता, क्या करूं, मैं बेबस हूँ। यद्यपि मैं यह अच्छी

तरह जानता हूँ कि यह मेरा कर्त्तव्य नहीं है तथापि न मालूम मुझे कौन सी शक्ति इसकी ओर प्रेरणा करती है, कौन सी व्याधि मेरे शरीर में यह पीड़ा उत्पन्न कराती है। मुझे अपनी कुछ सुध-बुध नहीं रहती है। मुझे ऐसा करने से न रोको, नहीं तो संसार में जीवित रहना मेरे लिये कठिन और असम्भव होगा।

यह सुन कर भास्कर की माता के चेहरे पर उदासी छा गई। व्याकुल हो वह कमरे में चिन्ता करने लगी। पिता तो पहले से ही उदास था। इसलिए वह भी किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो गया।

आखिर कुछ समय इसी तरह गुज़र गया। सूर्य भगवान् ने अपनी प्रखर किरणों द्वारा सारे लोक को सन्तप्त करने का कार्य अपना कर्तव्य समझकर ग्रीष्म-ऋतु में प्रवेश किया। दिन पर दिन गरमी बढ़ती गई। कॉलेज में तीन मास की छुट्टी हुई। भास्कर अब बहुत ही व्याकुल होने लगा। वह बहुत विचारने लगा और हर वक्त उस उन्मत्त की बात दोहराने लगा—"कृष्णा हर जगह व्यापक है, हर जगह उसका घर है, उसका विशेष आनन्द जंगल में ही लिया जाता है।"

भास्कर के पिता ने चारों ओर दूत भेज दिये थे, पर कृष्णा का कहीं पता न लगा था। अब केवल एक उपाय रह गया और वह था भास्कर का खुद ही कृष्णा की खोज में निकलना। बस अब क्या था, एक दिन वह घर से निकल पड़ा। चारों ओर वृक्षों से व्याप्त, कोकिल आदि के कलरवों से गुंजित, झरनों से शोभित और उत्तम साधुओं के आश्रमों से पवित्र वन में जाकर भास्कर ऋषियों की भांति एक पर्ण-गृह बना कर कृष्णा की प्रतीक्षा करने लगा। वह कृष्णा के प्रेम में अन्धा हो कर फल-मूलों से ही अपना निर्वाह करता था। वह कभी इधर जङ्गल में मृग की तरह फिरता और कभी उधर वृक्षों के कुंजों में कृष्णा को पाने के लिए भटकता, पर उसे कहीं भी कृष्णा का पता न लगा। तेरह दिन ऐसे ही बीत गये और भास्कर अधिकाधिक आकुल होने लगा। चौदहवें दिन वह वन में फिरते २ मध्याह्न को हताश होकर एक वृक्ष की छाया में बैठ गया। सामने एक झरना बहता था। क्या देखता है कि पन्द्रह वर्ष की एक कन्या घड़ा लेकर झरने पर पानी भर रही है और फूलों का एक गुच्छा हाथ में लेकर गा रही है। एकाएक भास्कर उसके पास गया और उससे कहने लगा—क्या तुम मुझे इस गुच्छे में से दो तीन फूल दे सकती हो?

जो मृगनयनी वन में विहार करती हुई भय का नाम न जानती है वह यही कन्या है, ऐसा भास्कर को प्रतीत होने लगा। वह कन्या गर्दन फेर कर भास्कर की ओर देखने लगी। उसके मुख पर मधुर मुस्कान छा गई। वह भास्कर का हाथ थाम कर उठ खड़ी हुई और फूलों का समूचा गुच्छा उस के हाथ में देकर कहने लगी—लो।

भास्कार ने पूछा—सच बतलाओ, तुम कौन हो?

उसका प्रश्न सुनकर वह कन्या आश्विन के मेघ की चमक और वृष्टि की भान्ति खिलखिला

कर हंसने लगी और बोल उठी—मैं वन में रहने वाले एक साधु की पुत्री हूँ।

भास्कर—तुम्हारा नाम क्या है ?

कन्या—कृष्णा।

भास्कर—(उन्मत्त की बात का स्मरण कर) तुम फिर हमारे घर में क्यों न थी ? इस समय हर जगह क्यों व्यापक न हो ?

कन्या पहले की तरह फिर हंसने लगी।

भास्कर अपने मन में सोचने लगा—"इस समय यह लज्जा के कारण इसका उत्तर नहीं दे सकती है। मेरे घर में पहुँचेगी तो अपना सारा परिचय देगी और अपनी व्यापकता भी दिखायेगी। अतः इस समय इससे पूछना उचित नहीं।"

भास्कर के मन से अब व्याकुलता दूर हुई और वह फूला नहीं समाया।

इधर भास्कर के पिता को यह समाचार मिला कि भास्कर ने वन में कृष्णा से विवाह किया है। उसने घर से घोड़ा, पालकी और दो तीन दूत भेज दिये। उन्हें देखकर कृष्णा ने पूछा—यह क्या है ?

भास्कर—अब तुम्हें हमारे घर चलना होगा।

कृष्णा विस्मित हुई। वह सोचने लगी कि वन में पिता के लिए रोटी पकानी है, फल मूल आदि जमा करने हैं, घड़ा अभी झरने पर ही है, पिता जी को सन्ध्यावन्दन आदि भी अभी करना है और वे मेरा इन्तिज़ार करते होंगे। फिर भास्कर से कहा—मैं नहीं आऊँगी।

दूतों ने शोर-गुल मचाया और किसी ने भी कृष्णा की यह बात नहीं सुनी।

जब कृष्णा की पालकी भास्कर के घर पहुँची तो उसकी माता ने कृष्णा को देखकर कपाल पर हाथ मार कर कहा—क्या यही वह कृष्णा है ? दासियां कहने लगीं—छिः छिः यह कैसी कृष्णा है !

भास्कर ने उन्हें समझाते हुए कहा कि उतावली न करो, तुम चुप रहो, यह अपना सर्वव्यापक रूप बना कर हर जगह दिखाई देगी।

बहुत दिन गुज़र गये, पर कृष्णा ने अपना सर्वव्यापक रूप नहीं दिखाया। भास्कर चुपके से उसकी व्यापकता देखने आया करता था, मगर उसे कुछ दिखाई न देता था। अब भास्कर को अपने माता-पिता के सामने कुछ लज्जा सी मालूम होने लगी। एक दिन उसे कृष्णा पर क्रोध आया। प्रातःकाल जब कृष्णा कहीं जाने लगी तो भास्कर ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—आज मैं तुम्हें नहीं छोडूंगा। तुम्हें अपना सारा भेद कहना पड़ेगा।

पहले कृष्णा ऐसे अवसर पर हंस उठती थी पर अब उसकी आंखों में आंसू भर आये।

भास्कर—तुम क्या मुझे कदापि न कहोगी ?

कृष्णा—आज अवश्य बतलाऊंगी और दिखाऊंगी भी, परन्तु इस समय नहीं बल्कि सायंकाल को।

भास्कर की उत्सुकता और उत्कण्ठा और भी बढ़ गई। पर कृष्णा बड़ी सोच में पड़ गई।

सायंकाल आ पहुँचा। भास्कर कमरे में कृष्णा से यह पूछने के लिये गया। कमरे में क्या देखता है कि कृष्णा नहीं बल्कि एक पत्र पड़ा है। उसने

पत्र को अपने थरथराते हुए हाथों से उठाया। पत्र पर लिखा था—

प्यारे भास्कर,

मैंने अब तक तुम्हें कुछ भी नहीं बताया, पर अब कहे देती हूँ कि जिस उन्मत्त आदमी ने तुम से मेरे विषय में कुछ कहा है वह उन्मत्त नहीं है बल्कि एक सच बोलने वाला पुरुष है। उन्मत्त तुम ही हो जिसको उसकी बात समझ में नहीं आई।

क्या कृष्णा रात्रि का नाम नहीं है? क्या रात्रि हर जगह व्यापक नहीं है? क्या इसका घर हर जगह विद्यमान नहीं है? क्या दिन के खतम होने पर यह प्रकट होकर सबको विश्राम-गृह में नहीं सुलाती?

तुम्हारी बुद्धि हास्यास्पद हो रही है। कृष्णा नाम की कोई स्त्री हर जगह व्यापक नहीं हो सकती। यह तुम्हारा भ्रम है। मैंने अपना परिचय तो दिया। सायंकाल हो जाने पर मेरी सर्वव्यापकता भी देख सकोगे। मैं अब जाती हूँ लेकिन मेरी तलाश अब निष्फल होगी। भला भास्कर (सूर्य) का कृष्णा (रात्रि) के साथ कैसे मेल हो सकता है।

आपकी
कृष्णा

जब उसने पत्र पढ़ लिया तो एकाएक अपने को उन्मत्त कह कर धिक्कारने लगा और कहा कि निःसंशय यह मेरी भूल थी। फिर वह कहीं चला गया।

इतने में अन्धेरा हो गया। प्रेम ने श्याम की ऐसी मनोहर कहानी सुनाने के लिये, बड़ी प्रशंसा की और दोनों बाग़ से उठकर चले गये।

हमारी नई पुस्तकें

१९९३—९४ से जो जो हिंदी की पुस्तकें हमारे कॉलेज के पुस्तकालय में रक्खी गई हैं, पाठकों की जानकारी के लिये, उन में से कुछ पुस्तकों और उन के लेखकों के नाम नीचे दिये जाते हैं।

'सम्पादक'

(क) नाटक—

	नाम—	लेखक
(१)	प्रतिमा (भास कृत)	(अनुवादक) बलदेव शास्त्री
(२)	चन्द्रगुप्त	जय शङ्कर प्रसाद
(३)	कुन्दमाला (दिङ्नाग कृत)	(अनुवादक) वागीश्वर भट्ट
(४)	सीता (रॉय–Roy के बंगला नाटक का अनुवाद)	(अनुवादक) पाण्ड्या
(५)	शकुन्तला (कालिदास-कृत)	(अनुवादक) राजा लच्मणसिंह
(६)	तितली	जय शङ्कर प्रसाद

(ख) इतिहास-साहित्य

(१)	इतिहास-दर्पण	वी० एन० वर्मा
(२)	आधुनिक हिंदी साहित्य	के० एस० शुक्ल
(३)	साहित्यालोचन	श्यामसुन्दर दास
(४)	आधुनिक हिंदी-नाटक-साहित्य	वेद व्यास
(५)	हिंदी साहित्य का इतिहास	व्रज रत्न दास
(६)	आलोचनादर्श	रमाशंकर शुक्ल
(७)	हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास	सूर्य कान्त
(८)	छन्द प्रभाकर	जगन्नाथ प्रसाद
(९)	हिन्दी गद्य-मीमांसा	रामकांत त्रिपाठी

(ग) काव्य

(१)	शिवाबावनी (सटीक)	राज नारायण शर्मा
(२)	कबीर का रहस्यवाद	आर० के० वर्म्मा
(३)	सूक्ति-स्तबक	रघुनन्दन शास्त्री
(४)	वीरसत्सई	वियोगी हरि

(५)	भक्त-पंचरत्न	उदय शङ्कर भट्ट
(६)	मनोहर-काव्य-माला	कैलाश नाथ भटनागर
(७)	काव्य-कमल	गोकल चन्द शर्मा
(८)	भूषण-ग्रन्थावली	राज नरायण शर्मा

(घ) व्याकरण

(१)	व्याकरण-मयंक	श्री सुरेश्वर पाठक
(२)	सरल अलङ्कार	नरोत्तम दास
(३)	सरल पत्र-लेखन	शुक्ल

(ङ) फुटकर

(१)	बुद्धदेव	एस० के. रॉय
(२)	नारद-पंचरत्न	... ...
(३)	सुन्दर-ग्रन्थावली	सुन्दर दास
(४)	सगर-विजय	उदय शंकर भट्ट
(५)	वध्यशिला	जगदीश शास्त्री
(६)	वीर-गाथा	सन्त राम
(७)	गद्य-प्रसून	कैलाश नाथ भटनागर
(८)	यशोधरा	मैथिली शरण गुप्त
(९)	भीम-प्रतिज्ञा	कैलाश नाथ भटनागर
(१०)	कुनाल	,, ,,

---

* हमारी दुनिया

(वीर विश्वेश्वर)

(१)

मुख मण्डल, ओ ! किस कारण यह
आज हुआ है म्लान ।
किस कारण अब भग्न-हृदय हो,
कहाँ गई मुस्कान ॥

(२)

क्यों कहते हो आया था मैं ?
वीणा में सुर लेकर ।
मैं भी तो स्वागत करने को,
आई थी उर लेकर ॥

(२)

जीवन इक संग्राम है जग में,
फिर क्यों खोते धीर ।
पग पग पर क्यों रुक जाते हो,
बन जाओ रणधीर ॥

(४)

किसमत उलटी, भाग्य हैं फूटे,
फूट गईं तकदीर ।
कायर कहते हैं ऐसा ही,
लड़ते हैं रणवीर ॥

(५)

'मेरी' और यह 'तेरी दुनिया',
कहते हो विपरीत ।
एक है दुनिया हम दोनों की,
आओ निभाओ प्रीत ॥

(६)

मैं भी दुखिया, तुम भी दुखिया,
दोनों हैं बन्धु हीन ।
दोनों का संसार है सूना,
दोनों जल बिन मीन ॥

(७)

कौन सा अन्तर फिर हम दो में, क्यों हो मिलना फिर दुश्वार ।
कह दो ना, 'फिर आन मिले हैं, आओ चलें उस पार ॥

(८)

भूल हुई है मुझ से भारी, क्षमा करो अपराध ।
ले के आश्रित को चरणों में, हर लो दुःख अगाध ॥

---

* ये कुछ तुकें 'श्रीयुत देहाती' के गद्यकाव्य 'मेरी और तेरी दुनिया' के उत्तर में लिखी गई हैं जो कि इस से पूर्व के अंक में छपा है—'वीर'

ॐ

"कश्मीर सोन यिथु कन्य, सरताज छु दीशनी मंज़ ।
काशुर ज़बां तिथै कन्य, सरताज बनिना क्या ?"

'वीर'

कांशुर बोग

अध्यक्ष

प्रो० जियालाल कौल एम. ए., प्रभाकर

सम्पादक

वीर विश्वेश्वर बी. ए. स्टूडेण्ट

लेख-सूची

—o—

ॐ

पनुन्य कथ

कश्मीर सोन यिथु कन्य, सरताज छु दीशनी मंज़ ।

काशुर ज़बाँ तिथै कन्य, सरताज बनिना क्या ?

कश्मीर छु सोन दीश । अस्य छि यतिक बासी, यतिकी अन्न तु पानि सूत्य छु सोन शरीर बन्योमुत। असि पज़ि असि कथि हुन्द गर्व आसुन ज़ि सोन ज़न्मस्थान छु सु युस अन सारिनुय दीशन हुन्द छु टिकु । दोपमुत छुक :—

'जननी, जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'—

ति न गव मांज्य तु जन्मस्थान छि स्वर्गु खोत तिं खसिथुथ—पञ्य पाठ्य छु जन्मस्थान ति असि तिथै पाठ्य पालन पोषण करान यिथ कन्य जन माता करि । लिहज़ा छि असि हिवी ऋण माता-यि हुन्द्य तु जन्मस्थानुक । यिथु कन्य असि छु गर्व ज़ि अस्य छि यथ दीशस मंज़ तिथै कन्य छु सु दीश ति भाग्यवान तु संपदायि सोस्त यमिक लूख ज़न, यमिस माजिहुन्द सन्तान ज़न माजिहुंज़,—पनुनि दीशुच सीवा करान, तु पनुन्य ऋण नख वालान । यिम छि न अख या ज़ु, यिम ऋण छि असंख्य । यिथ कन्य दोपमुत छुक ज़ि माजिहुन्द अख दोदु गोल ह्यकान छु न सन्तान नखवालिथ तिथै कन्य ह्यकव न अस्य ज़न्मस्थानुक्य ऋण नख वालिथ मगर अम्युक मतलब मा गव ज़ि असि पज़ि छ्वपु दम करिथ बिहुन, न असि पज़ि यथा शक्ति सीवा करुन्य। अदु यमि सुन्द्य किन्य यि यियि तु ती ।

अख बड कथ यसु ज़न छय सो छय यी ज़ि असि पज़ि सभ्यता ह्यछुन्य यमि सभ्यतायि वात-नाव्य अंग्रेज़ यथ थज़रस तु अनिन वोदुयस । तिहँदु सितारु छु वुन्यक्यन प्रज़ज़ान तु ज़ोतान। सोय तु तिछी सभ्यतायि हुंज़ छु यति ज़रूरत तु स किथ कन्य बनि। सु बनि काशिस साहित्यस बजर तु वृद्धि दिन किन्य । क्याज़ि प्रथ कुनि दीशुकिस साहित्यस छु आसान ततिकिस समाजस ततिक्यन लूकन तु तति चि सभ्यतायि सूत्य स्यठाह् तु गूड संबन्ध। कुनि दीशि कि साहित्य किनि छि ह्यकान अस्य ततिक्यन लूकन, तत्युक तोरु तरज़, तिहुन्दु वोथनबिहुन ब्ययि तिहँज़ि सभ्यतायि हुन्द पताह लगान। अगर यहोय साहित्य आसि न दीशिक सारी हालाथ तु ब्ययि ब्ययि ज़रूरी चीज़ रोज़न

खटिथ—तिम किथ कन्य ननन असि। अगर काँह साहित्य आसिहे न यति अज़ किथ कन्य लगिहे असि पता ज़ि सानिस सरताज दीशस मंज़ ति आस्य बड्य २ ऋश्य त साध—कश्यप जियिन ही ऋश्य, कालिदास, सोमदेव, ही शाइर, कल्हण ही तवारीखदान, सोया ही इंजनियर, ललद्यद त रोप भवानी हिशि आरिफ त दीवी, ऋ्यशु पीर ही महातीज़ वान तपीश्वर त ब्यियि ब्यियि रत्न यिम ज़न सिर्यिक पाठ्य चमकेय त अमर बनेय। असि छु गर्व ज़ि सानि दीशि मंज़ द्राय तिम लाल यिमौ ज़न संसार कोर हैरान त वुनि ति छि न यतिक केंह पथ ही । कशीरिं हन्द्य सन्तान छि वुन्यक्यन ति सारसी संसारस मंज़ महशूर। तिहुंदि अकि दुदराय सत्य छि कम कम रुस्तुम अज़ति खोचान । जवाहिर लालस कुस ज़ानिन। सु छुना यतिकुय लाल । कृष्ण जुव राज़दान त ललद्यदि हन्द्यन वाक्यन कुस अखा ज़ानिन । स्व कोसु भाषा छय यथ अन्दर न यिहन्द ज़िकर आसि। परमानन्द त नीलकँठ जियस हीय त्या शायिर यिहुंदि अकि अकि शब्द मंज़ छय भक्ति, आदर्श, गम्भीरता त फलसफ टपकान। खैर यि कम्युक छु सोरुय प्रभाव । यिम हालाथ किथ कन्य नन्येय असि—अमी साहित्य किन्य—त यहोय मतलब छथ छु काशुर भोग ति प्रतापुक प्रामुत—ति क्या गौ ? ति ज़न गव इथै कन्य

काशुर साहित्य ज़िन्द थावुन त थोद वातनावुन । असि छु प्रथ विज़ि मनस मंज़ यहोय खय्याल थावुन ज़ि पनन्य काशर ज़बान गछ़ि थदुन्य, फोलुन्य त नवुन्य । क्याज़ि दीश्यक यिम कारण वोदयिक छि आसान तिमौ मंज़ छु 'साहित्य' बोड अख अस्त्रा अख । मगर यलि अस्य छि त्रावान पनन्यन लेखन वाल्यन कुन नज़र त छय स्यठाह न्यराशा सपदान । क्याज़ि तिम छि यछ़ान सोरुय गोछ़ आसस मंज़ वातुन मगर तिमा बनि । योत ताम न काँह वुछुग करि तोत तान्य छु असम्भव ज़ि ज़ीवस क्या कासि अन्दि केंह। साहित्य खात्र लेखौ केंह त तोति करौ आशा ज़ि यि गोछ़ फोलुन त व्यकासस युन। यिम चीज़ छिन बिह बिह बनान । यिम चीज़ छि सारिनुय हुँज़ संपदा आसान । इथिस चीज़स छु सारिनुय पनुन २ हक़। अमि हिसाब वूज़ितौ तोह्य पानै ज़ि कात्याह छि असि मंज़ यिम ज़न पननिस जन्मस्थानस छि ऋण नख वालान। केंचन छि यि खबर ज़ि अस्य छि सम्पादकस मिनथ थवान ज़ि अस्य छि तमिस लेख दिवान क्याज़ि तिमौ छु खय्याल शायद यी कोरुमुत ज़ि यि छि सम्पादक सुंज़ सारय काम त ब्ययि छ्यस पनन्य काम असि क्या—तिमन गछ़ि कीवल आसुन परन, खेत्र, केंह त लथ कडनै पत, कठ। यि छु तिमन भ्रम । प्रताप छु न सम्पादक सुन्द पनुन चीज़ा ह्‍ यि खोश

कर्यस तु ति करि मगर यि छु सारिनुय वायन हुंदि खात्र तु तिहुंदि अभ्यास खात्रु ज़ि तिम ह्यछन ना केंह। गोडु गौ तिमन खति कडनु खात्र छु प्रतापुक मैदान तिहुंदि खात्र यलु इवान त्रावनु ज़ि पड़ायि सूत्य र करया तिम पनुन्यन भावन हुन्द इज़्हार ज़ान तु सोन्दर पाठ्य तिथु कया न यिथ कन्य ज़न ड्ययिस खरित मनक्रुह गछ्यस। यि छु अख सहल तरीका अख पनुनिस ह्यमागस व्यकास अनुनुक। क्याज़ि पनुनि भाषायि मंज़ छु ह्यकान प्रथ कांह जान जान भाव प्रकटाविथ। वोन्य छि केंह यिम ज़न हीथ छि ह्यवान ज़ि 'असि महारा छु न तगान साफ लिपि मंज़ लेखुन। वोन्य कति ह्यछव गोडु, अदु लेखौ। वोन्य कर्यूस तोही हिंदी काशुर केंछा'। यि गव खान-माजर अथ क्या वनौ अस्य। नत छि साफ कथ ज़ि यमिस तोग न अकिलटि सु करि लेखन ब्रोंह तक्लीफ ज़ि केंचन प्रतापन हुँद परि काशुर भाग्य त तमिस ननि पानै पनुन्य गलती तु मुश्किली। यहोय छय अथ सहल व्यध यथ ज़न न छु खर्च त न छयस मिनथी'। वोन्य गौ काँह यछि न केंह करुण तमिस क्या करौ। ज़ोर ति बनिन आप्रावुन। यि छु पनुन २ फर्ज़। वोन्य अगर ज़ानिथ मानिथ करि न कांह तमि खात्र मा वोत ब्याख मारुन।

खेर पोतुस छय म्य वोन्य यिहेय कथ वनुन्य ज़ि असि पज़ि पनुन्यन अतनन हुन्दु खय्याल करिथ पनुन पनुन फर्ज़ अदा करुन तु पननिस साहित्यस दोह खोत, दोह वृधी करुन्य।

सम्पादक

दीदार हाविना म्ये

(लेखक—वीर विश्वेश्वर)

मति वनत बाल यारस, दीदार हाविना म्ये।
बेकस त बे वतन छुस, दीदार हाविना म्ये ॥ १ ॥

त्राविथ चोलुम सु हाँछल, यावुन म्य सोरु नोवुन।
वारान बागसुय मंज़, दीदार हाविना म्ये ॥ २ ॥

प्रथ जायि फल्यमती गुल, बोलान छि तोतु बुलबुल।
यिय ना सु यार वुनिक्यन, दीदार हाविना म्ये ॥ ३ ॥

बेमार छुस ब प्योमुत छुम लोल तब सन्योमुत ।

प्रथ विज़ि करान ब्व ज़ारी, दीदार हाविना म्ये ।। ४ ।।

दोहु अकि जानवारा ओसुस वुडान लज्ञन प्यठ ।

त्राविम च़ टिथ ज़ु पर तम्य, दीदार हाविना म्ये ।। ५ ।।

प्रारान म्य रात्य रातस, चश्मन खुमार सपुदुम ।

वद्य वद्य म्य गाश सोर्योम, दीदार हाविना म्ये ।। ६ ।।

दिल किस रबाबु सय प्यठ, सोज़ांह म्य दर्दकुय तुल ।

आलम म्य न्यन्दुर्य वुज़नोव, दीदार हाविना म्ये ।। ७ ।।

महादिव बिश्तु

(ले०—वीर विश्वेश्वर)

महादिव ओस अमिस नाव । यि कमिस ? ति आसि तोहि पानै तोरमुत फिकिरिह । अमिस ओस पेशु (यि ज़न आम लूख छि वनान) चूर करन्य । मगर म्य छु नु बासान ज़ि यि गयि चूर करन्य । चूर करन्य क्या गयि । चूर करन्य गयि कांसि हुंद कांह चीज़ तम्यसुंदि इजाज़त बगैर न्युन त सु खटुन । वोन्य वुछतौ तोह्य ति त्रोह कुन ज़ि आया यि महादिव ओस चूर किनु साद — थवितौ यि तान्य अतीय—वोन्य छु बोड सवाल ज़ि बिश्त क्या गौ । यि नन्यव नु अज़ तान्य ज़ि अमिस क्याज़िइ आस्य यि वनान — अथ बिशतस छि ज़ मान्ये —अख छि अस्य यि वनान यलि ज़न कांसि केंह यियि न पहरस ब्रोंह कनि आसिथ बोज़ुनु त करान छिस बिशत या ज्यादह आम कथ योस ज़न अथ सत्य छ सु छय अन्यो बिशत' त वोन्य छिस अज़ केंह पनन्य हन ति मिलवान ज़ि—

'अन्यो. बिश्तु—न्यकुन वुछत'

व्याख मतलब युस अथ छु तथ वरिश छु यथ सत्य कांह वाठ । बिष्त छि वनान त्रारिस कुन कडन विज़ि म्य छु वासान ज़ि मतलब छु स्युद — यिथु कन्य ज़न त्रारिस छ तन श्रूच तु मन छ्यट तिथै पाठि ओस अमिसति मन छ्यट तु तन श्रच ति ज़न गौ अन्दरु ओस नाकारह मगर न्यबर ओस श्रूच । ति क्या गौ—? अन्दुर्य किन मल आसुन ज़न गौ यहोय चूरि हुन्दु मगर न्यबुर्य ति ओस न युथ । सु अगर ओस चूर करान तु केहुन्दि खेत्र ? तिहुंद

खात्र यिमन यड ओस न बत—युमत स्वयन स्यट त वलन ज़ट ओस न आसान। अगर सु गरीबन तु बे कस्तन हुन्द ओस पोज़ हमदर्द त सु गत्र चूर। यिहोय ओस कारण ज़ि अमिस ओस न तमाह ज़ि चूर करहा मगर यि गौ मजबूर लिहज़ा गौ यि पानै अमी हिसाब शूच। मनुय अगर छ्युट ओसुस वासना ति आसुस न यिछ। स्य छु बासान ज़ि पंज्य पास्य ओस यि ब्रार्य संदि हिसाब।

श्रोर ति छु ज़ान २ चीज़ुनय पत आसान यिथै कंन्य ओस यिति। यलि कुनि घरस अचान छु त छि गुर वाल्य अमिस विश्त कर २ ज़ोर छ्नान कड्य २ मगर सु छु मोक बुछ्रान त थवान सफाई करिथ यहोय हाल महादिव काकनि हक ति। वोन्य आस्य लिहज़ा। अमिस ति विश्त करान क्याज़ि यि ओस ब्रार्य सन्दी पाठ्य अचान त नेरान। युतलान्य कोरुङ्स विश्त सही—गौ पानै महादिव-बिश्तु।

यि ओस चूर ज़रूर मगर ग़रीबन हुन्द खात्र। यलि रटिहे कँसि त्यलि रटिहे कांसि ग्रंडिस हिविस। पानस सोंव ह्यक्यहे यि अकि थपि सत्य वरी बत कडिथ मगर वोन्य क्या ओसुस—यहोय ग़रीबन हुंद दोद। यि ज़न अज़कल छि लूख महसूस करान ज़ि समीय गछ्न सारी आसुन ति ओसमु लाछ बट त्यलि नु परनु मंज़ु ज़ानान तु तमीय प्यव अमिस ति ती करुन यि ज़न बड्यन २ ति स्यज़रस मंज़ वथ यियहे न। तम्य कमिस मिसकीनस कोरु न अथरोट, सु ओस न बेक्ल कँह ति—रातस रातस ओस फेरान, वुछान कुस छु दुःखी, कुस छु हाजतमन्द, राज़न ह्यु पाठ्य मगर अफ़सूस तमिस पूर्यव न कर्मसी कँह। सु ओस पंज्य पाठ्य आली दमाग, होसल नन्द, खेरख़ाह तु दर्दमन्द। काँह करिहे छूट छूट बत, दादि, पलव, दादि, कँसि आसिहे दःख त सु वातिहे न तमिस। मोखसर बूज़िनौ ज़ि गींठरि वाल्यन हुन्द ओस सु दुश्मन। यथ अस्य वनान छि (Aristocracy) खानदानी, सु ओस अथ्य बरखलाफ़। तमिस आस्य पंज्य पाठ्य तिमै खय्याल यिम रूस किस लिननस (Linens) आस्य। सु ओस न यछान वुछनव काँह पनुन मुसीबतस मंज़ ब्ययि आधीन कँसि। सु ओस दिलदाद आज़ादी हुन्द यसु न तमिस नसीबस आस। यिहोय ओस सु खय्याल यम्य ज़न स यि नीच कर्म करनावु मगर करिहे तिक्या मजबूर ओस। यलि न स्यज्र अंद्योस कँह त्यलि पोकु सु हुज़र। तमिस अन्दर आस्य आज़ादी हुंद तिमै खय्याल यिम ज़न लिकनस (Lincoln) आस्य मगर सु क्या करिहे सु ओस ना काशुर तमीय। ब्ययिस दीशस मंज़ आसिहे सु आसिह ना अर्शस खोतमुत।

इंगलिस्तान किस राबिन हुडस (Robbin-hood) ओस बुथ बानु त अमिस ओस न। सु रोज़िहे ज़िन्द मरिथ ति त यि रोज़िह्यन। वोन्य छु अख सवाल ज़ि अगर तमिस यिम ग्वन आस्य सु क्याज़ि चमक्यौ न ? ति छि पोज़। ग्वन छि नु खटिथ रोज़ान। तथ क्यासु ओस अख बोड कारन ज़ि सु ओस न यछ़ान पनुन असली मुदआ बावुन कांसि प्यठ। सु ओस यछ़ान पनुन रोब लूकन प्यठ तिथै कन्य जमाविथ थवुन। सु ओस जानी करान मगर चूरि पाठ्य। लिहज़ा लज्य न लूकन खबर तम्य सन्द्यन ग्वनन हुंज़। सु रूद तिमन निश चूरीय। वोन्य यिमन खबर आसु तिमन ओस अम्यसुन्द भयि। क्याज़िह जानी करिथ ओस सु ज़ोर खटिथ थवनावान। अकि लटि अकि गयि कामु सु खोत गरस अकिस हब कदल निशि ति क्याज़ि दार आस वछ़ुथ त अपार्य आस होगाड़ मुश्क यिवान। यि गौ हेरान ज़ि न्यसफ रातन त होगाड रननि क्या ? अति बज्ञ्योस स्यठाह शक। मगर वोनकन्यी वूज़न ज़ि यि छय कोस तान्य ज़नान रनान। वोन्य छु सोचान 'खसै त गछितन अमिस कैंह' मगर वुछ़न बगैर ति मा बिहे। यिछु सोचानुय ज़ि गयस अति अकिस मर्दस संज़ कथ ति। बस खोत यि त वोत ह्योर यिमन ओंह कनि। तिम खूच्य स्यठाह त बीठिस वननि "यति क्या नेरी असि निश। ख्यन छय न म्यट, वलन छय न ज़ट, चै आख त क्या मतलब" अम्य ति वोनुनख न किंहीं त द्राव लोति पाठ्य" तिमन खच वालिञ्ज बोठ हिश त छि करान भगवानस कुन आही। पगाह गयि दलीला ज़ि अमी विज़ सुलि पहान खोत यि ब्ययि अपारी। अमिदोह आस्स यिम पनन्य किन्य वीठिमुत दारिवर लोपरिथ। यि यलि वोत ओतनस त ज़रदेयि यिम स्यठा मगर ह्युतनख स्यठाह दिलासा ह्य त दिच़न अमिस बुढ़स रोपयि ठेलि हेना। बुढ़ बिचार काँप्यौ ज़ि खबर क्या खुर अन्यम मान्योनस न कैंह ति। यलि महादिव ज़ुबन यि वुछ त खोच़नाविन क्याज़ि अथ ओस न ब्ययि काँह तरीक अमि बगैर यमि किन्य ज़न यि बुढ़ यि रोपयि ठील रटि हे। दोपुनस, "अगर च यि रटख त गव ज़ान। रटख नै त बो मारोवु दोश्वे।" तिम क्या ह्यकहेनस वनिथ। दुनिया ओस अमिस खोचान। लोति पाठ्य रोटनयि ठेलिहन त ब्यूठ। यलि महादिव बिश्तन वुछ ज़ि यिमन खच वाल्यञ्ज बोठत वोनुनख ज़ि तोह्य म खूचिव ! म्य दिच़मौ यिम रोपयि ज़ानिथ। तोति छु अथ तञ्ज तमी किन्य। वोन्य लगि न

यि छूट छूट करन्य।'' पत बनेयि तिम स्यठाह सन्य मितर पानवुन्य मगर नेरन विज़ि कोरुनस ठाख ज़ि युथ न कैंसि निशि यि वनख ज़ि फलान्य दिचनम रोपयि—। कुस करि यि—यत्यै दिमौ वोजुम कैंसि केंह तु ज़नमन छिस लार करान तु मिनथ थवान। अम्यसुन्द दिल वुछितौ कोताह कोमल तु साफ ओस। कांचा हमदर्दी आंस आमिस मंज़। अकिस बेंहालस अथरोट् करिथ कोरुण तमिस ठाख-यि ओस न यछ़ान ज़ि लूख वुछन ना आमिस अम्य नज़रि।

यिथुय यि ओस हमदर्द तु बडु संजीदु तिथुय ओस बडु मसखर। अथ्य हालतस मंज़ ओस यि वातान महाराजस तान्य। अकि लटि अकि न्यूख यि रटिथ इथैकन्य तु वातान वातान वोत यि मामलु महारजस तान्य। तम्य यलियि वुछ तु प्रछुनस ज़िच्य क्याज़ि कोरुथ यि कार' तोर वोथुस-"महाराज ! अथ हन्य ओस न चार केंहति। ति करिथ गरीब ओसं न ज़ि नुक्सान गोस। यलि व पानस ख्योन न ह्युतुन ब्ययन अथ छु यी कायिद।" महाराज गव हेरान तु वोनुनस, "च किथ कन्य खोतुख चूरि तति यलि बड हिसाब ओस। दरवाज़ ति ओस न यल कांह।" यि वोथुस—'चूरस निशि गयि न यिम बजि कथ"—महाराज गव अम्यसुँद जुरथ वुछिथ स्यठाह खोश तु दोपनस-"अच्छा यलि च्य यूत छुय स्य हाव च यथ हफ़्तस कांह चीज़ यत्युक युस च्य चूरि आसी न्यूमुत।" यलि यि फेसलु गव तु द्राव महादिव दोयमि दोह मगर अति छु पहरु ज़बरदस्त। यि यलि अम्य वुछ अम्य चट तान्य कथ योततान्य यि शिख्ये यिहिश। दोह अकि गयि कामा आव महादिवस मोकु तु खोत। रयतकोल छु प्यठिमि दार्यण हुन्द आस्य वोव्य यलि—(तिमन दोहन आस्य यिम महाराज प्रतापसिंह शेरगढ़ि मंज़ी आसान यति वोन्य अज़कल दफ़्तर बनेयि)। अम्य ओस करमुच कामा लोरि कुटुनस वोलुमुत क्याह तान्य यमि किन्य ज़न तथ आस रेयि खच मच बेशुमार। यि लोरिह्यन आस्य अम्य सत्यं तुजमुच। ओत यलि वोत आमिस निशि अति आस न केंह ति व्यस्तारा। सूंचन चीज अगर निम कांह तु तिथुय आस्यतन ब्ययिस जायि। अथ कुस करि पछ लिहाज़ा अगर न्युन गछ्य तु केंह वलनुक सामानय।'' यलि न अति अथा वथा केंह आयस अम्य तुज्य यि लोरिहुण तु थवन चारपायि दन्द्रि सूत्य। यिम रेयि खच आमिस कुरतनि प्यठिमि। केंच काल्य लज्य आमिस तछन हिश तु छु वुछान मगर बासान छुस न केंह ति। आखर कडन यि पलवहुण तु थावन दूर पाहन। महादिवन कर कामा यि चल्य तन यि पलवहुण हाथ ब्ययि इथैकण! राथ छय चेर आमुच। महाराजस यलि न न्यहु ति आयि तु वोथ। गाशति ओसुन ह्युतुमुत युन। दुपान छि मि सु ओस सुलि बोथान तु पूजा पाठ

करिथ बिहान। मगर यलि वोथ तु अति छु नु प्यठ्युम पलवय वुछान कुनि। लोग सख्त तफतीश सुबहन दरबारस मंज़ मगर खबर कमिस छय। मुल्कस गयि क्रख। अति आस दरबारस मंज़ सूसरी गूसरी सपदानय ज़ि महादिव जुवा गव पलवा ह्यथ पैदु। सारी गयि शशदर रूज़िथ। पत वन्य महादिव जुवन महाराजस सारय दलील। महाराज गाव यि अम्यसुन्द जटु बूज़िथ स्यठाह खोश। दपान छि ज़ि पतु ओस गाह ब्यगाह महाराज तमिस अननावान नाद दिथ तु आखर त्रावुनोव तमी पत.वूर करन्य। पतै ओस अमिस मूजूद ति केंह सु लोगु अम्य यिथै कन्य ग़रीबन प्यठ।

अस्बुन बाथ

लालु लछमण*

(सोज़न वोल—द्वारिकानाथ भट्ट)

शुक्दरो शुक्दरो मोल मा मारे, लालु लछमन शक्दारे द्राव॥

बुडाह अख आस पेमचु तु गामचु, मरनु दादि आसय दुदुरेमचु।

कलु कोडुन दारि किन तु अख लोगुस कारे, लालु लछमन शक्दारे द्राव॥१॥

---

* सु कुस बुडु आसि युस ज़न यि बाथ आसि न ज़ानान—ज्यादु छु यि गामन मंज़ आम। अथ व्येशि छ्य स्यठा केंह कथु माशूर लीकिन छय पज़ कथ—

अछ्य छि दपान ज़ि यि ओस अख डाकु वोला अख। सुय ओस स्यठा मसखरु तु ब्ययि ओस सु यहैय बातु बाज़ी करान। अम्य संज़ु मसखरि छि आम। दपान अकि लटि चाव यि गरस अकिस बतु ख्यनि। तिमौ आस रन्यमचु मुलय्व्यन। वोन्य यलि अमिस ग्रुतुख बत तु ख्यवान २ गव थोद वथित तु कोरुन बजि माजि आलव, क्याज़ि अथ छा मुलय्व्यनि जठ हिश आसाम तु वोननस—"तलबी यथ दितम ख्रुर कडिथ।" वोन्य छि लूख दपान ज़ि यि बाथ ति हसु छु तमी कोडुमुत। तु केंह छि दपान ज़ि यि छु 'परमानंदुन' तु केंह दपान प्रकाश रामुन' मगर पज़ कथ छुन ननान। शायद छु यि सीन ब सीन चलान आमुत तु यि छुस वोन्य रूदमुत फ़ुटान फ्राटान।

'वीर'

डएडा अथस क्यथ जज़ीरा चारिथ, द्राव लालु लछमन कार मारिथ।

मंज़िलस वातिथ फश दितुन द्वारे, लालु लछमन..................॥२॥

लालन मंज़िल कोड खाहव अंदर्य, म्रस्य द्राय वंदने ज़ुव तै ज़ान।

अञ्चन आस्य कुकर तै ठूल अटबारे, लालु लछमन..................॥३॥

लालन खूमु यलि ग्युत मंज़ खाहस, पहर दिनि लग्य म्रस्य शुर तै बाच।

चूर आव राथ क्युत तु सारी लारे, लालु लछमन..................॥४॥

लालन त्रोव तुल्य खूमु तै डेरा, दव तुजिन तु चूरि रूद नम्बले मंज़।

खोफ चास यी कि चूर मा मारे, लालु लछमन..................॥५॥

राथ गयि तु सुबहन छि लालस छांडान, लालु छुख न कुनिति अथि यिवान।

छांडान छांडान चोपार्य लारे, लालु लछमन..................॥६॥

लालु कोडुख नम्बलि मंज़ु लिथुनौमुत, म्रस्य छिस चटान टीफ तै टांछ।

तस तोति खोफ ओस चूर मा मारे, लालु लछमन..................॥७॥

लालु द्राव हरदस फसल वटने, म्रुस छुस न दिवान कांह ति केंह।

डएडा ह्यथ ओस गोमुत तारे लालु लछमन..................॥८॥

————

वाक्य

१. ललीश्वरी ह्युंध

(सोम्प्रावन वोल—द्वारिका नाथ भट्ट
त्रयुम वरी)

फेरेयस दुन दीशन तु ब्ययि बवसरन ।
नेब न त निशान लोबमस न कुनै ।।१।।

लल बु द्रायस लो लरे ।
छांडान लूसुम दोह तै राथ ।।
पतव वुछुम पण्डित बिहिथ पनने गरे ।
सुय वुछमस ज़न निछतर तै साथ ।।२।।

नाबद बारस अट गंड ड्योल गोम ।
धन काठ होल गोम मुल कही ।।
गुरु सुंद वचुन रावुन ग्योल गोम ।
पहिल रूस द्योल गोम मुल कही ।।३।।

दमी डीठमस नद पकवनी ।
दमी डीठमस गज दज़वुनी ४।।
दमी डीठमस थर फुलवुनी ।
दमी ड्यूठमस न सूर न सास ।।
दमी डीठुम पांच्न पावडन हुंज़ मांजी ।
दमी ड़ीठुम क्रांजी मास ।।५।।

पृछाम पण्डितन ब्ययि अपरन ।
बवसर किथ पांठ्य छि पार तरन ।।

तिम लग्य बोज़ुनि तिम लग्य रिने ।

ललि छि छांड़ान तु लल नो कुने ॥६॥

लूकिस क्रय छय कुलिस बामुन ।

बड़िथ तु क्रय छय नावि लमुन ॥७॥

अछ़ान आयस गछ़ुन गछ़ ।

पकुन गच्छे, रात्र दिन ॥

यती आयस तुतय छु गछुन ।

सोरुन मन किन रात्र दिन ॥८॥

यथ बवुसरस काल संघाट गोम ।

जहाज़स वाट गोम पुश दिले ॥

गुरु सुंद वचुन बवुसर तार गोम ।

सार छुम ईश्वर सुंदय नाव ॥६॥

लूब मारुन, सहज़ व्यचारुन ।

द्रोग ज़ानुन कल्पन त्रावुन ॥१०॥

मूढ्स ज्ञानच कथ नो वनिज़े ।

रावरिज़िन कोमयाजन तील ॥

पनुन पान वाँचित दह वाच रछिम ।

राह छुम पानस अरखुर सुगुम ॥११॥

२–हर काकुन्य*

हर ओस पांचु वुहुर माज्ि ओस चवान शीर दार ।

फेर्योस गङ्गा गैयन तु बवसरन, प्रेम तसु दे मुसाफिर द्राव ॥१॥

कांत्याह दान करेय हरन, मुलेह नो मोनुस काया खरन ।

लागन तु कन्यन प्योस परन, मुलेह नो मोनुम काया खरन ॥२॥

ज़प तप करिथ अति प्यस परन, तमी वथ लबुय हरन ।

द्रढ़ भक्त गण्डित अति प्यस परन, कुनी वथ हावुम श्री भ्रगु गुरन ॥३॥

केंचन दितुथ ओरय आलव, केंचव रटिय नालय रिह ।

केंचव मस च्यथ अछु दिचु तालव, केंह गय गरन फालव दिथ ॥४॥

केंह छी उदी तै केंह न्यंद्रि हती, केंह छी आन करिथ ति काव पुतो ।

कुस छै पुश तै कुस पुशानी, बावुक पम्पोश लागस पूज़े ॥५॥

पथ छुन आठ त्रक परमान, ओंठ रठ मालि सतची त्राय ।

त्युथ हा नेरख अमु मंज़ै, युथ दान्यस छै नेरान लाय ॥६॥

नमिथ तु वोलुम नाभिस्थानस, समिथ तु खोरुम ब्रह्मेंद्रय थानस ।

बोलवुन वुछुम शूनि मकानस, यिनो मुहिथ चलनय अनज़ानस ॥७॥

---

*हरु काक जी ति छि आंस्युमत्य पननि समुयि ललद्यदि हुन्द्य पाठ्य आरिफ़ । यिमौ ति छि तिहिन्दी पाठ्य वाक्य लीखिमुत्य । चूंकि हरु काक ति आंस्य न ज़्यादु नंन्य तमि किन छि तिहुन्द्य वाक्य ति कमय लूकन खबर ।

अड्य काकन्य कथ*

अख पादशाहा अख ओस दीशस अकिस मंज़ राज करान। तमिस ओस न काँह ति शुराह कोटा लिहज़ा गव सु अकि दोह अकिस ग्वसानिस निश पनन्य कथ वननि। यि ग्वसोन्य ओस अकिस जंगलस मंज़ कुलिस अकिस तल बिहिथ आसान। वुन्य यलि अम्य ग्वसोन्य अम्य संज़ दलील बूज़ तु गोस स्यठाह तरिथ दोपनस, "अदस गछ़ हुथ स्यव कुलिस तल, अति यिम मेव तुलख तिम गछ़न निन्य गर। अथ़ै ही गछ़न दिन्य बार्यायि पननि तु स्यन्ध ही गछ़न त्राविथ छ़्तन्य। राज़ गव तु कोरुन इथै पाठ्य। मगर अमि रानीय ख्यव ग़लती किन्य प्रोन स्यव। केंच़ काल पत ज़ाव तस न्यचुव मगर सु ओस ओडुय। तमिस ओस ओडुय कलु ओडुय बुथ त ओडुय पान। लिहज़ा प्यव अमिस 'अड्यकाक' नाव।

यलि यि अड्य काक वोत बोड यि गव अकि दोह पनन्यन दोदबायन सत्य जंगलस कुन फेर-ना करनि। पकान २ गै यिम स्यठाह दूर त अति वुछ अम्य अख बुढ ज़नाना। यि आस डान त यि वुछिथ लज्य अमिस वननि—"च्य कोत छुय गछ़ुन ठाठि म्यानि। वोल अज़ सोन तति ख्यावथ बु कम कम चीज़। अड्य काक ओस पुख़्त तु मोननस दोपुन, "तला वोल वुछव क्या दलील छय"। ओत। वातिथ कोर अमि यिमन जान खातिरहना तु रटिन ज़ोर रातस। तिम यलि शोंग्य यि वछ़ तु त्रावन यिमन प्यठ सफेद चादर। अमिस आस केंह कोरि तु तिम ति साव्यन यिमन नज़दीक युय न यिमन केंह शक गछ़ि मगर तिमन त्रावन क्रहुन्य चादर

---

* यि कथ छय आम। असली छय अमिच सोर्ख़ी 'अड्य है तंबलावनस, कोरि सथ ख्यावनसौ' क्याज़िह दपान छि ज़ि अमिस आस सथ कोरि यिम जन धोख किन मोयि पनुनी माजि हुन्दि अथु। ब्ययि छि दपान जि पत करेयोव अमि डानि स्यठाह जि यिम मारहख मगर अड्य काक प्योस पुठ त मारन यिति सागा करनावनुकि बहान। तोत पोन्य त्रावण कनि त्रावनस तच़ तील, क्राय योतताम मोक्लावन। अद ओसै पत, तमिस केंह सु सोद अड्य काकन घर—'वीर'।

प्यठ ।

यि करिथ वछ यि पानु चूरि २ चोकस मंज़ अख तील क्राय कारुनि । यि तील ज़न त्राविहे यि अज्य काकस त ब्ययि तम्य सन्द्यन दोदु— बायन प्यठ । अज्य काक ओस त्यलंग । अम्य च्यून । यि वोथ वार वार त तुजिन यिमन कोर्यन प्यठ यि कइन्य चादर त त्रावन पानस प्यठ त तिमन प्यठ त्रावन पनन्य चादर । न्यन्दर कथ यियिहस ब्यूठ आखिथ खोख मारनि ज़नत न्यन्दर आसस । यलि वोन्य न्यसफ राथा हिश गयि यि बुढ ज़नान (डान) आयि क्राय ह्यथ वार वार त त्रावन यकदम सफेद चादरि प्यठ । पान वछ चोकस मंज़ त चंज्य आखिथ डोरह दिथ नागस अकिस प्यठ केंछा पोन्य अनुन खात्र त केंछा अमि किन जि तोत ताल्य आसन यिम शेहलेमुत्य । ह्यवान दिवान आयि यि गरिहना मूछरावित । अन्दर चायि न कुनि जि प्ययि पथर क्या छयु वुछान जि पनन्यै कोरि छयम दज़मचु त अज्य काक बमै पनन्य दोद बाय ह्यथ चोलमुत । बीठ वछ चेटनि । चू रस ति प्यव बोड चूर । अम्युक मतलब ज़न छु वोन्य ईच हन जि 'बाज्यगारस बाज्य गरस' । तमि यछेयो तिमन नाकारु मगर कोद्रथा यिछ़ जि अति समख्योस पानसुय ।

गिरधारी लाल ब्यशुन

त्रियुम वरी ।

अर्चना

*(नील कण्ठ जी शर्मा 'उब')

श्याम रूपु तल चरन कमलन रामचंद्रो वरतमो ।
दास वत्सल वासुदेवो वासना शुद करतमो ॥ १ ॥
देहचे लंकायि अंदर मन रावनुय म्ये मारतम ।
च्यतु किस विबीशनस च प्रेम राज पुशर्तमो ॥२॥

---

*नील कण्ठ जियिन कवितायि छय अमूमन स्यठा जान आसान । यिम छि 'वासकुरि' निश रोज़ान, यिहुँदि बाकै ज़ान्य खोतुर गछन वुछुन्य 'प्रतापुक्य' यमि ब्रठिम केंह अंक ।

'संपादक'

काम ु क्रूदस लूब ु मोहस ु वश बनिथ प्रोवुम म्य खीद ।

॥ शीश शायन ईश केशव यिम च ु त्रिशवय हरतमो ॥ ३ ॥

पाप ु कर्मव किन्य म्य वूगिम ज़्युन मरनक्य दुःख स्यठा ।

॥ पालना करुवुन पिता च ु य बालुवत गंज़रतमो ॥ ४ ॥

सोज़न वोल—

द्वारिका नाथ भट्ट

त्रियुम वरी

पनुन यार*

ललवुन थोवथम नार यारो, चाल ु कोताह ब ु ।

फोलुवुन छुक गुलज़ार यारो, चाल ु कोताह ब ु ॥ १ ॥

छुक च ु दर बाज़ार यारो पान ु दूकानदार ।

मसलि सोदागार यारो, चाल ु कोताह ब ु ॥ २ ॥

छ्यचतम दोस देवार यारो थोवथम ना सार ।

छुक यूत ज़ोरावार यारो, चाल ु कोताह ब ु ॥ ३ ॥

लागिथ आहम जादूगर यारो बन्द करथस ब ु ।

चलनस छुम ना वार यारो, चाल ु कोताह ब ु ॥ ४ ॥

यदवै ओसहम टोठ च ु यारो लायथम तरवार ।

खूनस लजिमा दार यारो, चाल ु कोताह ब ु ॥ ५ ॥

---

* 'यि कविता छय द्वारिकानाथ भट्टन सूज़मच ु । मगर ताजुब छु ज़ि तिमौ छु न ु लेखन वाल्य सुन्द नाव ल्यूखमुत । म्य छु बासान ज़ि लेखनवाल्य सुन्द नावगछि आसुन 'खाकसार' यि ज़न पतिमि मिसुर तल ु ननान छु'—'वीर' ।

छाव् गुल तु गुल्ज़ार यारो आव मलालै।
गुल गछ़न रोज़न खार यारो, चालु कोताह बु॥ ६॥
छी वनान ज़ार यारो पानै खाकसार।
वुनि ति यियी ना आर यारो, चालु कोताह बु॥ ७॥

तलुस कर्युतौ असनहना।

(राधे चन्द्र]

(१)

अकि दोहु अकि गव अख बालुक अकिस जायि सालस। यमि सातन सु गरि द्राव तु माजि वोननस तोरय हा ओनुथ 'तोति तिति'१ तु दितिनस केंह पासु। बालुक वोथुस अदबी अनै त द्राव सालस। यलि सु गरि द्राव वति पकान पकान ओस च्यतस थवान ज़ि म्य छु अनुन अख 'तोति तिति'। पकान २ वोत अकिस कद्लस प्यठ यति ज़न गाडु हांज़ आस्य गाड रटान त यि बालुक ब्यूठ तमाश वुछिनि। तमाश वुछिथ यलि यि वोत अपोर तु लोग सोचनि ज़ि म्य क्या ओस वोनुमुत माजि अनुन। अमिस ओस गोमुत मशिथ नाव अमि चीज़ुक। सु ठहर्यव तती। अमि सातन ओस अख ज़ोन अपार्य पकान। तम्य प्रुछ़ अमिस बालकस ज़ि च् क्या छुख सोचान। बालुक लोगुस वननि ज़ि म्य हसु रोव अख चीज़ यतिनस। यलि अम्य वोनुस यि तु यि लोग छ़ाडुनि योतान्य शाम वोत तु ब्यथि समेय वारुयाह लूख तु तिम ति लग्य छ़ाडुनि। छ़ाडान २ यलि नु केंह ति आव इमन लूकन अनिगट्य बोज़ुनु तु अख ज़ोन वोथ ब्ययिस कुन ज़ि चला गछ़त तोति तिति अनतु। यूतुय अम्य सुंद वनुन तु बालकस प्यव च्यतस तु वोनुनख म्य हा लोब पनुन चीज़ तु चोल। तिम दोरेस पतु मगर सु आख न केंह ति रटन तु आय सारि वापस तु गय पनुन्यन गरन।

(२)

अकि दोह द्राव अख बालुक च्यादहालु त्रेश च्यनि न्यबर अकिस नलकस प्यठ। तति प्रुछ़ुस अक्य ज़न्य ज़ि मास्टर छुवा अत्य। बालुक वोथुस ज़ि आहन सु तु खोत च्यादहाल तु वोनुन मास्टरस ज़ि तोहि माहरा ओस बोन नलि तल कुसतामत छ़ाडान। युथुय मास्टरन यि बूज़ सु वोथ वुछ़नि ज़ि आया म्य कुस छु छ़ांडान। यलि

१. लालटीन।

थि बोन बोथ अति वुछुन न काहं ति तु खोत वापस तु लोग बालकस प्रछुनि ज़ि कुसू ओस म्य छांडान। बालुक लोगुस वनुनि ज़ि यलि माहरा ब्व व्रोथुस नलि तल त्रेश च्यनि अति प्रुछुनम अक्य ज़न्य ज़ि मास्टर छुवा अत्य तवय किन बोनमव म्य ज़ि तोहि माहरा छुवु कुसतामथ बोनु नलितल छांडान।

हुबाब

(द्वारिका नाथ भट्ट, त्रियुम बरो)

१

फ़िकिरि च्यानि ब्व मोयस, ज़ान न वनिथ।
म्योन ह्यू बनिथ कस सना आव ॥ १॥
अंत रोस्त दरयाव ज़न गोम सनिथ।
दूर गोम पान त कस कर प्राव ॥ २॥
चाव च्वानि मोयस कस ज़ानु वनिथ।
म्योन ह्यू बनिथ कुस सना आव ॥ ३ ॥

२

वनतो सस कम्य बावुख।
मदुनो च्य लोल ओय नो॥
लोलु फंद करिथ कम्य मचरोवुख।
यिति च्ये कांसि बवुय नो॥
लोकचार सोरुय च्ये पतु रोवुम।
मदुनो च्य लोल ओय नो॥

सोन वतन

(श्रीयुत 'तीर्थ काश्मीरी')❀

कश्मीर वतन मुबारक जनत-निशान सोनुय ।
आबाद रूज़ितन शाद छु गुलसितान सोनुय ॥१॥

अज़ुवन्य छि आबशारय अन्य छी कोहसारय ।
हरमोख तु पीर पंचाल, कोह पास्बान सोनुय ॥२॥

असुवुन्य वसान व्यतस्ता बखशान छि ज़िन्दगानी ।
व्यथि वोन्य रूद अज़ तान्य ज़िन्द कारवान सोनुय ॥३॥

बेदार नवजवानो ! बुग्ज़ो अनाद त्राविव ।
आयुतछि वाटनै वोन्य व्ययि मेहरबान सोनुय ॥४॥

खदमत करिव गरीबन कमज़ोर पेमती यिम् ।
वातिव मुकामसी प्यठ यति छु मकान सोनुय ॥५॥

यकजा समिथ व्ययिव वोन्य ! "कश्मीर ज़िन्दु जावीद" ।
ज़ी होश अहल-हिम्मत पीरो जवान सोनुय ॥६॥

ख़िदमत छु सोन मक़सद नीकी छुय सोन मज़हब ।
मोहब्बत छु सोन ईमान, शफ़क़त निशान सोनुय ॥७॥

मन्दर छु सोन मसजिद माबद छु गिरजु खानै ।
हैरान छी मलायिक दिल शादमान सोनुय ॥८॥

ज्यवि प्यठ छु दोन जहानन महबूब सोन 'तीर्थ' ।
रूहै खान सोनुय रश्के जनाँ सोनुय ॥९॥

❀ तीर्थ सावुन जोश छु काशिरस मंज़ ति बराबर सुय रूदमुत युस ज़न यिहुन्द न उर्दू नज़मन तुसरस मंज़ छु आसान । स्य छु बासान ज़ि उर्दू खोतु छु यिहुन्द काशुर ज्यादु सनु वुन यिमौ । छथ काश्रिस पद्यस मंज़ 'शिव रत्नानन्द चरित्र' इत्यादि केंह २ बनावमुत मगर तिम छिनु वुनि छपेमुत्य केंह ति । बाक़ै ननि पाठकन सोरूय प्यठिमि कवितायि किन्य । 'वीर'

गप-शप

(त्रिलोकी नाथ रैना, त्रियुम वरी)

(१)

अख बेक्का गौ कान्दरस निश कुलचि ह्यनि। अखा तुलुन तु लोगुस बुथि २ वुछिनि। सु ओस ताज़ु तथ यलि अख लोग तु फुट। अमि मंज़ द्रायस ज़ुव। दोपुनस—"हे यथ हसु द्रायि .ज़ुव" कान्द्रन तुज्य चपाथ तु लायिनस, दोपुनस,—"कोल ज़लती ! फातिरु ! दर बदर छुक गोमुत--रोपयबरस छु कुल्चिवोर अमि मंज़ गोछु. अंज़ नेरुन"

(२)

फातिर जोराह लग्य कोलि अकिस तरनि—अखाह वोथुस—"हे वोन्य क्या बनि, खोर गछि न बरनु युन—

ब्यय दोपनस, खोर लद चन्दस तु पानै वातख अपोर आसानी सान"।

———